वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २५

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

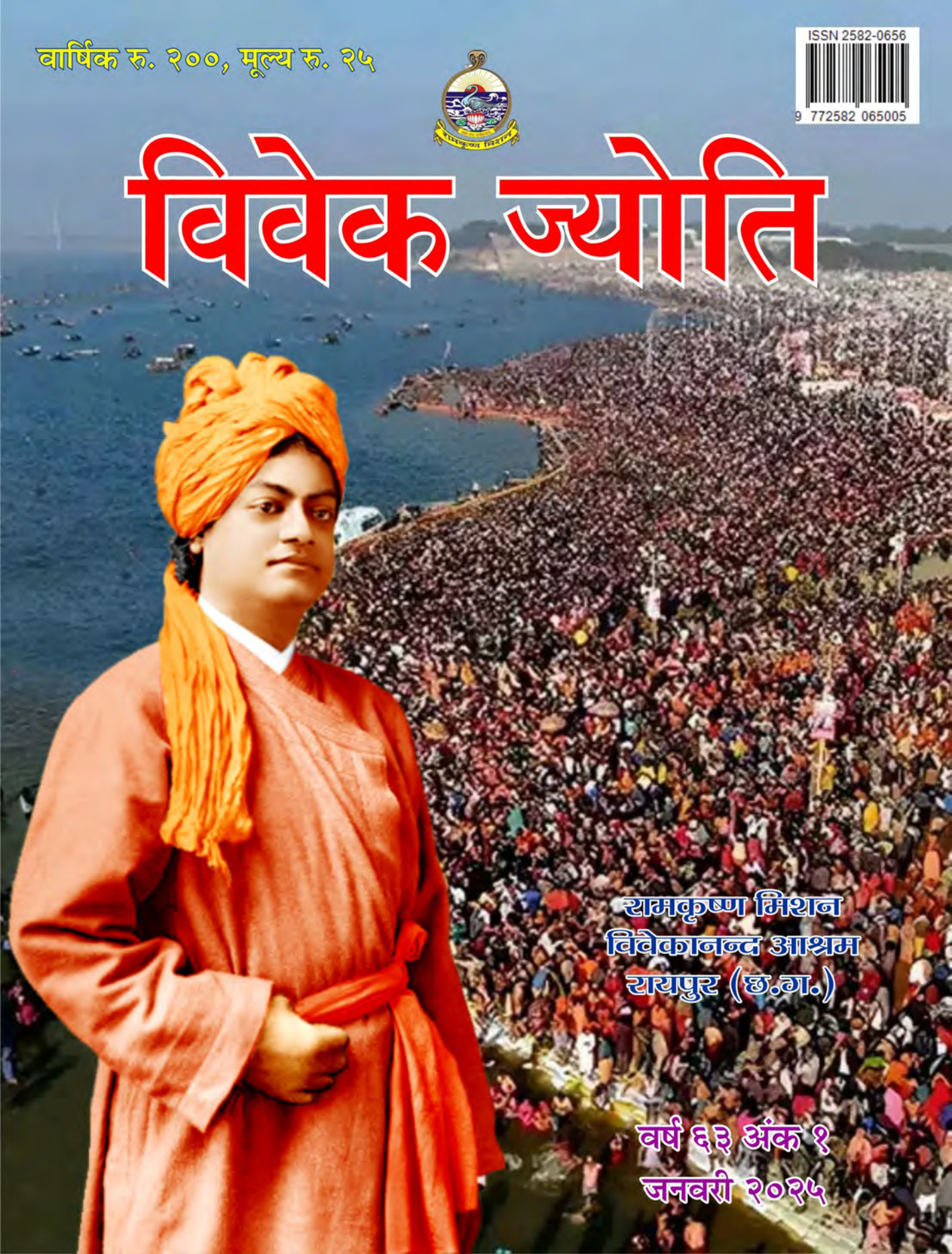

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६३ अंक १
जनवरी २०२५

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६३

अंक ०१

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

पौष, सम्वत् २०८१

जनवरी, २०२५

अनुक्रमणिका

* धर्म को बिना हानि पहुँचाये जनता की उन्नति : विवेकानन्द ६
* वर्तमान युवाओं हेतु स्वामी विवेकानन्द का सन्देश (स्वामी शुद्धिदानन्द) ११
* स्वामी विवेकानन्द की प्रखर राष्ट्रीय चेतना (उत्कर्ष चौबे) १५
* माँ त्वं ही तारा और स्वामी विवेकानन्द (डॉ. अन्वय मुखोपाध्याय) २१
* (बच्चों का आंगन) विवेकानन्द के जन्म-दिवस मकर-संक्रान्ति की वैज्ञानिकता का जन-जीवन में प्रभाव (श्रीमती मिताली सिंह) २५
* स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गाँधी (स्वामी सत्यरूपानन्द) २६
* आधुनिक भारत को स्वामी विवेकानन्द का योगदान (डॉ. महेश प्रसाद राय) २८
* (युवा प्रांगण) युवाओं के प्रेरणास्रोत स्वामी विवेकानन्द (स्वामी गुणदानन्द) ३१
* स्वामी विवेकानन्द का संस्कृत-विद्या में पाण्डित्य (डॉ. राजेश सरकार) ३४
* (कविता) भारत के तुम अनुपम गौरव (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा), जय हे स्वामी विवेकानन्द (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी') १०
* (कविता) मन चंचल है वश में कर ले (केयूरभूषण), परम धन्य वह जीव है (भानुदत्त त्रिपाठी, 'मधुरेश') ३९
* पुस्तक समीक्षा ४५
* पुस्तकें प्राप्त हुईं ४५

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ५
सम्पादकीय ७
श्रीरामकृष्ण-गीता १०
पुरखों की थाती १७
रामगीता १८
प्रश्नोपनिषद् ३३
गीतातत्त्व-चिन्तन ४०
साधुओं के पावन प्रसंग ४३
समाचार और सूचनाएँ ४६

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ***०९८२७१ ९७५३५*** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,**
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २५/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	६० यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	३००/-	१५००/-	

भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा ।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

जनवरी माह के जयन्ती और त्यौहार

०५ स्वामी सारदानन्द
१२ राष्ट्रीय युवा दिवस, स्वामी तुरीयानन्द
२१ स्वामी विवेकानन्द
२६ गणतंत्र दिवस
३१ स्वामी ब्रह्मानन्द
१०,२५ एकादशी

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर प्रदर्शित चित्र महाकुम्भ के अवसर पर प्रयागराज के त्रिवेणी संगम में स्नान करते हुए विशाल श्रद्धालुओं का है और राष्ट्र-पुरुष स्वामी विवेकानन्द का है।

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्त्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ६२ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्त्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **– व्यवस्थापक**

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद (उ.प्र.)	६,००१/-
श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद (उ.प्र.)	९,५०१/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

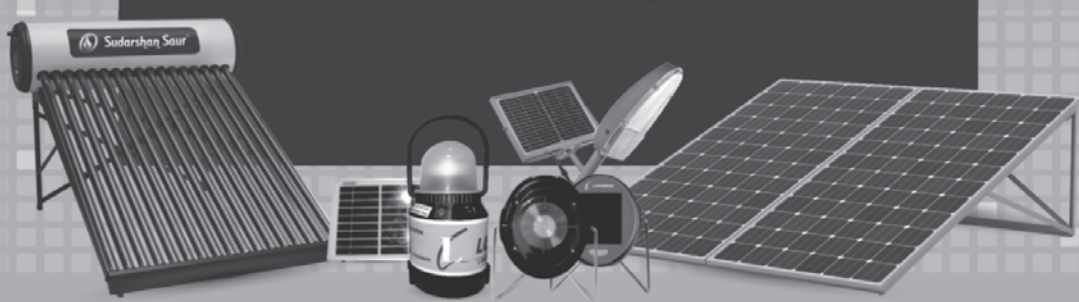

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६३ **जनवरी २०२५** **अंक ०१**

स्वामी विवेकानन्द जयगीतम्

पुरानन्तध्वान्तैरुपहतशिवज्ञानविभवे
भवे नाना मार्गैरिह समुदिते दूषणशते।
हितं तत्त्वं चेतुं शिखमतिरगाद् यः प्रतिदिशं
नरेन्द्राख्यः सोऽसौ जयति विषयापास्तहृदयः।।

– प्राचीन काल में समस्त पृथ्वी पर अज्ञान के द्वारा कल्याणकारी ज्ञान की महिमा जब विलुप्त हो गयी थी, बहुत से कुपथगामियों के कारण इस संसार में जब शत-शत दोष दिखने लगे थे, उस समय भी तीक्ष्ण बुद्धिवाले नरेन्द्रनाथ नामक जिस युवक ने मंगलजनक तत्त्वज्ञान के अन्वेषण में दिशाओं-दिशाओं में भ्रमण किया, उन्हीं विषय-वासनारहित परहितव्रती महात्मा की जय हो !

ततो गत्वा गत्वा विविधमतमाश्रित्य भजतां
समीपे सन्देहादनुपगतमुक्तिः कथमपि।
श्रितो यः संसिद्धं द्विजमथ जहौ संशयमलं
विवेकानन्दोऽसौ जयति जडतामुक्तहृदयः।।

– सत्यान्वेषी होकर विविध मतावलम्बी साधकों में कई लोगों के पास जाकर भी जब उनके मन का संशय किसी प्रकार दूर नहीं हुआ, तब एक महासिद्ध ब्राह्मण (श्रीरामकृष्ण) के पास जाकर अपने हृदय की जड़-ग्रन्थि छिन्न होने पर संदेह-मल से मुक्त हुये थे, उन्हीं विवेकानन्द की जय हो।

तमेनं विश्वासाद् गुरुंकृत दृष्टार्थमवशः
स चाप्येनं मेने कुशलशरणं भारतभुवः।
तदादेशाद्धर्मं प्रथयितुमगाद् योऽपभुवं
विवेकानन्दोऽसौ जयति जनताजाड्यहरणः।।

– तब उन्होंने परमार्थवेत्ता ब्राह्मण की क्षमताओं का दर्शन कर उनके प्रति दृढ़ विश्वास हो जाने पर उन्हें अपना गुरु स्वीकार किया और उनको समग्र भारत का एकमात्र कुशल-रक्षक मानकर उनके पद-प्रान्त में बैठकर सनातन वैदिक धर्म की शिक्षा ग्रहण की। तदनन्तर उनका आदेश पाकर जिसने धर्मप्रचार हेतु विभिन्न देशों की यात्रा की, जनों के धर्म की जड़ता और संकीर्णता हरण करनेवाले उन्हीं विवेकानन्द की जय हो।

धर्म को बिना हानि पहुँचाये जनता की उन्नति : विवेकानन्द

मेरा मत क्या है, जानते हो? उक्त प्रकार से हम लोग वेदान्त धर्म का गूढ़ रहस्य पाश्चात्य जगत् में प्रचार करके उन महा शक्तिशाली राष्ट्रों की श्रद्धा और सहानुभूति प्राप्त करेंगे और आध्यात्मिक विषय में सर्वदा उनके गुरुस्थानीय बने रहेंगे। दूसरी ओर वे अन्यान्य ऐहिक विषयों में हमारे गुरु बने रहेंगे। जिस दिन भारतवासी धर्म शिक्षा के लिए पाश्चात्यों के कदमों पर चलेंगे, उसी दिन इस अधःपतित जाति का जातित्व सदा के लिए नष्ट हो जायेगा। 'हमें यह दे दो, हमें वह दे दो', ऐसे आन्दोलन से सफलता प्राप्त नहीं होगी। वरन् उपर्युक्त आदान-प्रदान के फलस्वरूप जब दोनों पक्षों में पारस्परिक श्रद्धा और सहानुभूति का आकर्षण पैदा होगा, तब अधिक चिल्लाने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। वे स्वयं हमारे लिए सब कुछ कर देंगे। मेरा विश्वास है कि वेदान्त धर्म की चर्चा और वेदान्त का सर्वत्र प्रचार होने से हमारा तथा उनका; दोनों का ही विशेष लाभ होगा। इसके सामने राजनीतिक चर्चा मेरी समझ में निम्न स्तर का उपाय है। अपने इस विश्वास को कार्य में परिणत करने के लिए मैं अपने प्राण तक दे दूँगा। आप यदि समझते हैं कि किसी दूसरे उपाय से भारत का कल्याण होगा, तो आप उसी उपाय का अवलम्बन ग्रहण कर आगे बढ़ते जाइए। (६/९/१०)

कोई भी सत्य, प्रेम तथा निष्कपटता को रोक नहीं सकता। क्या तुम निष्कपट हो? मरते दम तक निःस्वार्थ? और प्रेमपरायण? तब डरो नहीं, मृत्यु से भी नहीं। आगे बढ़ो। सारा संसार आलोक चाहता है। उसे बड़ी आशा है। एकमात्र भारत ही में यह आलोक है। यह रहस्यपूर्ण निरर्थक धार्मिक अनुष्ठानों में या छल कपट में नहीं है। यह उन उपदेशों में है, जो यथार्थ धर्म के सारतत्त्व की महिमा की शिक्षा देती है, सर्वोच्च आध्यात्मिक तत्त्व की शिक्षा देती है। यही कारण है कि प्रभु ने इस जाति को इसके इतने सारे उतार-चढ़ानों के बावजूद आज भी सुरक्षित रखा है। अब समय उपस्थित हुआ है। मेरे वीरहृदय युवको, यह विश्वास रखो कि अनेक महान कार्य करने के लिए तुम सब का जन्म हुआ है। कुत्तों के भूँकने से न डरो, नहीं, स्वर्ग के वज्र से भी न डरो। उठ खड़े हो जाओ और कार्य करते चलो। (२/३९६)

जीवन में मेरी एकमात्र अभिलाषा यही है कि एक ऐसे चक्र का प्रवर्तन कर दूँ, जो उच्च एवं श्रेष्ठ विचारों को

सबके द्वारों तक पहुँचा दे और फिर महिला-पुरुष अपने भाग्य का निर्णय स्वयं कर लें। हमारे पूर्वजों तथा अन्य देशों ने भी जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर क्या विचार किया है, यह सर्वसाधारण को जानने दो। विशेषकर उन्हें यह देखने दो कि और लोग इस समय क्या कर रहे हैं और तब उन्हें अपना निर्णय करने दो। रासायनिक द्रव्य इकट्ठे कर दो और प्रकृति के नियमानुसार वे कोई विशेष आकार धारण कर लेंगे। परिश्रम करो, अटल रहो और भगवान पर श्रद्धा रखो। काम शुरू कर दो। देर-सबेर मैं आ ही रहा हूँ। 'धर्म को बिना हानि पहुँचाये जनता की उन्नति' – इसे अपना आदर्श-वाक्य बना लो।''

अब प्रयोजन है गीता के सिंहनादकारी श्रीकृष्ण की, धनुषधारी श्रीरामचन्द्र की, महावीर की, माँ काली की पूजा की। इसी से लोग महा उद्यम के साथ कर्म में लगेंगे और शक्तिशाली बनेंगे। मैंने बहुत अच्छी तरह विचार करके देखा है कि वर्तमान काल में जो धर्म की रट लगा रहे हैं, उनमें से बहुत लोग पाशवी दुर्बलता से भरे हुए हैं, विकृत मस्तिष्क हैं अथवा उन्मादग्रस्त। बिना रजोगुण के तेरा अब न इहलोक है और न परलोक। घोर तमोगुण से देश भर गया है। फल भी उसका वैसा ही हो रहा है – इस जीवन में दासत्व और परलोक में नरक। (६/१७)

सम्पादकीय

राष्ट्र के कल्याण हेतु महाकुम्भ में एक महान संकल्प लें

पूर्व वर्षों की भाँति इस वर्ष भी जनवरी और फरवरी, २०२५ में महाकुम्भ मेला का आयोजन हो रहा है। महाकुम्भ मेला अपनी आध्यात्मिकता हेतु विश्वप्रसिद्ध है। इस अवधि में प्रयागराज त्रिवेणी संगम में धर्म और संस्कृति के प्रति मानव की आस्था दर्शनीय होती है। कितनी भी असुविधाओं में अपने सारे दुख-कष्ट भुलाकर त्रिवेणी में सानन्द एक डुबकी लगाने हेतु लोग व्यग्र रहते हैं। उस भयंकर शीत-लहरी में साधु-सन्तों, अखाड़ों, पुलिस प्रशासन और अन्य नियमों का अनुपालन करते हुये प्रात:कालीन गंगा मैया में डुबकी लगाकर अपने जीवन के पाप-ताप दुखादि के नाश हेतु जन-संकुल व्यग्र रहता है। गंगा मैया की गोद में स्नान करने के बाद उन्हें अद्भुत शान्ति और प्रसन्नता का बोध होता है। ग्रामीण माताएँ अपनी लोकभाषा में गीत गाती हुई माँ गंगा की पूजा करती हैं, फूल चढ़ाती हैं, दीप जलाकर आरती करती हैं और अपने हाथों से बनाई हुई घी या तेल लगी हुई रोटी, गुड़, फल-मिठाई आदि भी चढ़ाती हैं। महाकुम्भ के अवसर पर अलौकिक दिव्य ईश्वरीय शक्तियाँ भी व्याप्त रहती हैं, जो श्रद्धालुओं की चेतना को ऊर्ध्व गति प्रदान करती हैं। एक ओर यह पर्व जन-मानस में आध्यात्मिकता का संचार करता है, तो दूसरी ओर भौतिक दृष्टि से राष्ट्र में एकता और समृद्धि वर्धित करता है। इस प्रकार यह महाकुम्भ पर्व भौतिक और आध्यात्मिक; दोनों दृष्टियों से समन्वित उत्कर्ष है और दोनों को अपनी परम्परा में समाहित किये हुये है। लोक-मानस-पटल पर दोनों का प्रभाव सुदृढ़ और अमिट है।

आपके एक संकल्प से देश और विश्व की दिशा बदल जायेगी

महाकुम्भ के इस पावन पर्व के उपलक्ष्य में मैं जन-समुदाय से एक दृढ़ संकल्प लेने को निवेदन करता हूँ। क्योंकि आपका मात्र एक संकल्प सम्पूर्ण देश और विश्व की दशा-दिशा को बदल देगा। आपका मात्र एक संकल्प सम्पूर्ण विश्व में एक अभिनव क्रान्ति लेकर आयेगा और एक अभिनव विश्व के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगा। इसके साथ ही युगनायक, अभिनव भारत के निर्माता स्वामी विवेकानन्द के सपनों को साकार करने में महान योगदान करेगा।

भ्रष्टाचार का दुष्परिणाम

यदि हमारे देश के नागरिक इस पावन पर्व पर यह महान संकल्प लेते हैं, तो देश की सभी समस्याओं का समाधान हो जायेगा और सभी देशवासी सुखी, समृद्ध, पूर्ण सुरक्षित और प्रसन्न रहेंगे। नैतिकता हमारे सभी कार्यों और क्रियाओं से जुड़ी हुई है। उसके अभाव में मानवता विभिन्न प्रकार की त्रासदी से दुख भोग रही है। अत्यन्त संक्षेप में अनैतिकता के कारण वर्तमान परिवेश में जो विषाक्तता भरी हुई है, वह द्रष्टव्य और चिन्तनीय है। वर्तमान परिवेश में अधिकांशत: **आर्थिक भ्रष्टाचार** की घटनाएँ हो रही हैं। यद्यपि कार्यों को सुचारु रूप से संचालित करने हेतु सरकार पारदर्शिता लाने हेतु प्रयासरत और कटिबद्ध है, फिर भी मानव में नैतिक मूल्यों के अभाव के कारण भ्रष्टाचार से जनता त्रस्त है। जन-कल्याणकारी एक से एक अच्छी योजनाओं का पूर्ण लाभ भी गरीबों और अन्य लाभार्थियों को नहीं मिल पाता और उन्हें आये दिन विभागों के चक्कर लगाने पड़ते हैं। खराब काम से पुल आदि टूटने की, बड़े-बड़े लोक-सेवक अधिकारियों के रिश्वत लेने और नेताओं के घोटाले आदि की आर्थिक भ्रष्टाचार की घटनाएँ अखबारों में प्रकाशित होती ही रहती हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशासन, आदि में आर्थिक भ्रष्टाचार की घटनाएँ आ रही हैं। इसके अतिरिक्त **चारित्रिक भ्रष्टाचार** से पूरा देश और विदेश दहल जा रहा है। अभया और कलकत्ता के डॉक्टर के साथ घटी घटनाओं ने पाषाण-हृदय को द्रवित कर दिया। ऐसी कितनी

घटनायें घट रही हैं। इसके साथ ही **बौद्धिक भ्रष्टाचार** हो रहा है। तथाकथित बुद्धिजीवियों द्वारा अच्छी चीजों के साथ दुष्प्रचार और असत्य घटनाएँ, तोड़-मरोड़कर दी जा रही हैं। बहुत-सी गलत चीजें कल्पनात्मक कथा-कहानियों को जन-समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, जो बच्चों और युवाओं के चरित्र-निर्माण में बाधक और हानिकर है तथा भ्रामक सूचनाएँ प्रदान करता है। अत: ऐसी वस्तुओं का लेखन, डिजिटल मिडिया के माध्यम से प्रसारण न किया जाये। यह एक **मानसिक भ्रष्टाचार** है, जिसमें कुछ लोग सदा अच्छे लोगों के बारे में भी गलत सोचते रहते हैं, अपने तुच्छ स्वार्थवश दूसरे सज्जनों से भी ईर्ष्या-द्वेष करते हैं। दूसरों के सम्बन्ध में दुर्भावना से बार-बार ऐसा सोचने से वही प्रत्यक्ष रूप से विवाद का प्रेरक बनता है।

समाज, देश और विश्व आज कदाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार और अनाचार से त्रस्त है। अहंकार, वर्चस्व और अपनी अस्मिता के संघर्ष में विश्वयुद्ध जैसी स्थिति बनी हुयी है, जिसके वैश्विक प्रभाव से जनता त्रस्त है और सुविधायें रहते हुये भी सुख-शान्ति से वंचित है। इन सभी भ्रष्टाचारों के मूल में अनैतिकता और दुराचरण है।

स्वामी विवेकानन्द के सपनों को साकार करने हेतु महाकुम्भ के अवसर पर नैतिक, सदाचारी बनने का संकल्प लें

इसलिये आइये, इस पुण्य महापर्व पर प्रत्येक भारतवासी को नैतिक और सदाचारी बनाने हेतु सर्वप्रथम स्वयं नैतिक और सदाचारी होने का संकल्प लें। एकमात्र नैतिक बनिए, बाकी सभी समस्याओं का समाधार स्वयमेव हो जायेगा। नैतिकता ही वह कुंजी है, जिससे समस्त सद्गुणों का जन्म और उसके अभाव में सभी अवगुणों का उदय होता है। नैतिकता ही सबसे बड़ा धर्म और कर्म है। नैतिकता के सम्बन्ध में ५ जनवरी, १८९० को प्रयागराज (इलाहाबाद) से ही स्वामी विवेकानन्द ने श्री यज्ञेश्वर भट्टाचार्य को लिखा था – ''नैतिक तथा साहसी बनो, अन्त:करण पूर्णतया शुद्ध रहना चाहिये। पूर्ण नीतिपरायण तथा साहसी बनो। प्राणों के लिये भी कभी न डरो। धार्मिक मत-मतान्तरों को लेकर व्यर्थ में माथा-पच्ची मत करो। कायर लोग ही पापाचरण करते हैं। वीर पुरुष कभी पापानुष्ठान नहीं करते। यहाँ तक कि कभी वे मन में भी पाप का विचार नहीं लाते। प्राणी मात्र से प्रेम करने का प्रयास करो।

''स्वयं मनुष्य बनो तथा राम इत्यादि को भी जो तुम्हारे संरक्षण में हैं, साहसी, नीतिपरायण तथा दूसरों के प्रति सहानुभूतिशील बनाने की चेष्टा करो। बच्चो, तुम्हारे लिये नीतिपरायणता तथा साहस को छोड़कर अन्य कोई दूसरा धर्म नहीं है। ...कायरता, पाप, असदाचरण तथा दुर्बलता तुममें बिलकुल नहीं रहनी चाहिये, शेष आवश्यकीय वस्तुएँ स्वयं अपने आप आकर उपस्थित होंगी।''[१]

नैतिकता क्या है?

नैतिकता में नीति शब्द मूल है। नैतिक अर्थात् नीति सम्बन्धी। बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार नीति की परिभाषा है – 'ले जाने की क्रिया, लोक-व्यवहार के निर्वाह के लिये नियत किया गया आचार, लोकाचार की वह पद्धति जिससे अपना कल्याण हो और दूसरे को हानि न पहुँचे, कार्य-विशेष की सिद्धि के लिये काम में लायी जानेवाली युक्ति। नीतिमान् का अर्थ है नीति के अनुसार आचरण करनेवाला, राजनीति में दक्ष, चतुर, बुद्धिमान, सदाचारी। सदाचारी का अर्थ है – सुकर्मी, अच्छा चाल-चलनवाला।'

नैतिक व्यक्ति वह है, जो नीति का पालन करता है, जो अपने जीवन को नीति-नियमों के अनुसार संचालित करता है। वे नीतियाँ कैसी हों? कोशकार ने एक अर्थ दिया है कि 'लोकाचार की वह पद्धति जिससे अपना कल्याण हो और दूसरे किसी की हानि न हो।' जो लोग ऐसी नीति का पालन करते हैं, वे नीतिमान, नैतिक व्यक्ति और सदाचारी हैं। राजा भर्तृहरि के अनुसार – **मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णास्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः** – तन-मन-वचन में पुण्य पीयूष से पूर्ण, नित्य परोपकार से त्रिलोक को प्रसन्न करनेवाला, ऐसा सज्जन व्यक्ति नैतिक है।

नैतिक व्यक्ति के प्रति जन-मानस में सर्वप्रथम अवधारणा बनती है कि यह व्यक्ति सत्यवादी होगा, सत्य आचरण करनेवाला सदाचारी होगा, सत्कर्मी होगा। नैतिक होने के लिये सर्वप्रथम अपेक्षित गुण है सत्य-पालन।

महर्षि पतंजलि ने यम की परिभाषा देते समय उसमें सत्य का उल्लेख किया। वे योगसूत्र में लिखते हैं – **अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः।** – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच 'यम' हैं। इसमें भी सत्य का उल्लेख किया गया। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में दैवी सम्पद

के प्रसंग में '**अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्**' में भी सत्य का उल्लेख किया। याज्ञवल्क्य स्मृति में भी धर्म-साधन हेतु कहा गया –

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
दानं दमो दया शान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम्।।

– अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रिय-निग्रह, दान, दम, संयम, दया और शान्ति ये धर्म के साधन हैं।

मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण बताये गये –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।[२]

– धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दस धर्म के लक्षण हैं।

इन सभी महापुरुषों ने सत्य का उल्लेख किया है। अतः एक सदाचारी और नैतिक व्यक्ति होने के लिये सत्य-पालन परम आवश्यक है। युगनायक स्वामी विवेकानन्द ने भी महान बनने हेतु जो तीन गुण बताये, उनमें सबसे पहला था – सदाचारी बनो। सत् अर्थात् शुभ, अच्छा का आचरण सदाचार है। क्या करें, क्या न करें, ऐसा विवेक-आश्रित आचरण सदाचार है। सर्वकाल में, सर्वस्थिति में सत्य का पालन सदाचार है।

सत्याश्रयी नहीं होने के कारण ही व्यक्ति मिथ्या विवाद करता है, लोभी होता है, दूसरे की सम्पत्ति पर अपना अधिकार जमाता है, रिश्वत लेता है, भ्रष्टाचार, कदाचार करता है। इसलिये तन-मन-वचन से सत्य का आश्रय लें। इससे सारी समस्याओं का समाधान हो जायेगा।

सत्य त्याग की शिक्षा देता है

राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य के लिये अपना राज-पाठ सब कुछ देकर दूसरे का दास बनना स्वीकार किया, लेकिन सत्य नहीं छोड़ा। श्रीरामकृष्ण देव के पिताजी अपना घर-द्वार, सारी सम्पत्ति छोड़कर दूसरे गाँव में आ गये, किन्तु जमींदार के लिये झूठी गवाही नहीं दी। सद्यः एक विश्वविद्यालय के कुलपति ने अपने पूरे कार्यकाल में एक भी नीतिविरुद्ध कार्य नहीं किया। अभी-अभी एक चिकित्सालय की नर्स विभाग की प्रभारी बच्ची ने एक नर्स के हित के लिये अपनी नौकरी छोड़ दी, किन्तु चिकित्सालय-प्रशासन के कहने पर रात में पुरुष-रोगियों के साथ १०० किलोमीटर दूर अकेले उस नर्स को नहीं भेजा। अभी-अभी उत्तर प्रदेश में सेवानिवृत्त एक आइएएस अधिकारी ने सत्य का ऐसा दृष्टान्त छोड़ा कि उनके विभाग ने उन्हें जनसभा में सम्मानित किया। उन अधिकारी के पास पूरा जीवन कार्य करने के बाद भी अपना घर, गाड़ी कुछ भी नहीं है। वे सदा जनसेवा में संलग्न रहे। ऐसे सत्यावलम्बी आज भी हैं। सत्य-पालन से साहस, दृढ़ता और प्रबल नैतिक शक्ति मिलती है, जिससे व्यक्ति अनुचित कर्म नहीं करता है। चाणक्य नीति में कहा गया –

येषां न विद्या न तपो न दानं
न चापि शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

– जिस नर में विद्या, तप, दान, शील, गुण और धर्म नहीं है, वह इस मृत्युलोग में पृथ्वी का भार है, नर रूप में पशु है।

अतः जो व्यक्ति नैतिक और सदाचारी होगा, उसमें सत्य के साथ-साथ शील भी होगा। नहीं तो, शील के अभाव में सत्य कर्कश होकर लोक में अप्रिय हो जाता है। इसलिये कहा गया **सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यम् अप्रियम्** – सत्य बोलो, प्रिय बोलो, किन्तु अप्रिय सत्य मत बोलो। अतः कह सकते हैं –

सत्य शील और धर्म का करे पालन जोय।
वही है नैतिक जग में वही सदाचारी होय।।

भर्तृहरि ने नीतिशतकम् में कहा है –

तेजस्विनः सुखमसूनपि सन्त्यजन्ति
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम्।[३]

– सत्यव्रत को धारण करनेवाले लोग सुख से अपने प्राणों को त्याग देते हैं, किन्तु अपनी प्रतिज्ञा को नहीं त्यागते।

आइये ! इस दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ महाकुम्भ के इस पावन पर्व में नैतिक और सदाचारी बनने का संकल्प लें और विश्व में भारतमाता को सर्वसमृद्धि और सर्वोच्च सिंहासन पर विराजमान करें। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. विवेकानन्द साहित्य, खंड १/३५०-५१ **२.** मनुस्मृति ६/९२ **३.** नीतिशतकम् श्लोक १०९

श्रीरामकृष्ण-गीता (४१)

(आठवाँ अध्याय ८/५)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

सजलकलशस्तम्भं यद्वत् संस्थाप्य मस्तके।

हिन्दुस्थाननिवासिन्यः स्त्रियोऽटन्ति यथासुखम्।।२४।।

– जैसे भारतीय महिलायें सिर पर जल का कलश लिये (एक-पर-एक ४-५ कलशी लिये) आराम से चली जाती हैं।

सुख-दुःखानि भाषन्ते जल्पन्ति स्वजनैः पथि।

मनो निविश्य कुम्भेषु स्खलिता न भवन्तु ते।।२५।।

– मार्ग में स्वजनों के साथ में गप भी करती हैं, सुख-दुख की बातें करती हैं, किन्तु उनका मन सिर पर रखे कलशी पर रहता है कि वे कहीं गिर न जायें।

श्रीरामकृष्ण उवाच

धर्मस्य पथि पान्थोऽप्यतन्द्रितः सन् सदा व्रजेत्।

तन्मार्गाच्च्यवतां नैव सर्वस्थितो मनस्तथा।।२६।।

– धर्म के पथिक को भी सदा सभी अवस्थाओं में ऐसी ही दृष्टि रखनी होगी, जिससे मन उस मार्ग से पतित न हो जाये।

द्वे वादयति हस्ताभ्यां द्वाभ्यां वाद्ये पृथक् पृथक्।

गायति च स वक्त्रेण गीतं वैतालिको यथा।।२७।।

– जैसे बाउल दो हाथों से दो प्रकार का वाद्य बजाता है और मुख से गीत गाता है।

रमेतां गृहिनस्तद्वत् करौ गृह्यकृतेऽखिले।

क्षणं तु वदनं मा भूत् तन्नामजपविस्मृतम्।।२८।।

– हे संसारी जीव! तुम लोग भी वैसे ही हाथों से सभी गृह-कार्य करो, किन्तु मुख से उनका (ईश्वर का) नाम जप करना क्षण भर के लिए भी मत भूलो। **(क्रमशः)**

कविता

भारत के तुम अनुपम गौरव

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

भारत के तुम अनुपम गौरव, वीर विवेकानन्द महान ।
नवयुग की तुम रचना करते, सकल विश्व को रखकर ध्यान ।।
दिव्य लोक से तुम आये प्रभु, सुनकर रामकृष्ण-आह्वान।
पृथिवी का दुख-ताप मिटाने, देने ब्रह्मतत्त्व का ज्ञान ।।
तुम ही हो प्रभु मुक्ति प्रदाता, हरते सकल जगत-अज्ञान ।
पूतचरित तुम पीड़ित-सेवक, कृपा पूर्ण तुम युग-वरदान ।।
सूर्यप्रभासम दीप्तिमान तुम, रामकृष्ण के तुम अभिमान ।
ऐसी मुझ पर किरपा कर दो, गाऊँ नित तव महिमा-गान ।।

कविता

जय हे स्वामी विवेकानन्द

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गया, बिहार

जय हे स्वामी विवेकानन्द । जय हे स्वामी विवेकानन्द ।
धर्मध्वजा रक्षक शुभकर्ता, दीन-दुखी जन के दुखहर्ता।
संन्यासी स्वच्छन्द, जय हे स्वामी विवेकानन्द ।।
ब्रह्मज्ञान-विज्ञान प्रदाता, करुणाकर जन-गण के त्राता ।
समदर्शी सुखकन्द, जय हे स्वामी विवेकानन्द ।।
तेजोमय त्रिभुवन-हितकारी, महा-मोह के मेटनहारी ।
काटत मायाफन्द, जय हे स्वामी विवेकानन्द ।।
विश्वविदित विक्रम-ब्रह्मचारी, वीरव्रती वंदित नर-नारी।
गावत जग यशछन्द, जय हे स्वामी विवेकानन्द ।।
वेदविज्ञ वेदान्त-विधायक, कुमति-हरण सुमति के दायक।
प्रेरत परमानन्द, जय हे स्वामी विवेकानन्द ।।
पाप-ताप-संताप निवारक, भ्रम-विभ्रम राक्षस संहारक।
दे गुरुवर आनन्द, जय हे स्वामी विवेकानन्द ।।

विवेकानन्द जयन्ती विशेष

वर्तमान युवाओं हेतु स्वामी विवेकानन्द का सन्देश

स्वामी शुद्धिदानन्द, अध्यक्ष, अद्वैत आश्रम, मायावती

अनुवाद – नम्रता वर्मा, पी.एन.बी. विभाग, दिल्ली

परिचय

हम सभी जानते हैं कि पूज्य स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज, स्वामी विवेकानन्द की सेना के अग्रणी सैनिक थे। इस सेना के सेनापति स्वयं स्वामी विवेकानन्द थे। पूज्य महाराज ने स्वामी विवेकानन्द के विचारों एवं भावों के अनुरूप स्वयं को पूर्णत: रूपायित कर लिया था। वे उसी भाव के लिए विश्व विख्यात रहे, जिस भाव से स्वामी विवेकानन्द ने लोक कल्याण के लिए कार्य किया। आज मुझे स्वामी विवेकानन्द के सेवादर्श के सन्दर्भ में युवाओं के प्रति उनके संदेश के विषय में वक्तव्य देने को कहा गया है। स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज स्वयं इसके उदाहरण हैं। हमने उन्हें अहर्निश जन-कल्याण के लिए उत्साह के साथ कार्य करते हुए देखा है।

जनसांख्यिकी अनुकूलता

मुझे याद है कि भारत के पूर्व राष्ट्रपति एवं हम सबके अत्यन्त प्रिय तथा आदरणीय डॉ. ए.पी.जे अब्दुल कलाम जी से कुछ वर्ष पूर्व एक युवा द्वारा प्रश्न पूछा गया – ''महोदय, भारत की मुख्य शक्ति एवं दुर्बलताएँ क्या-क्या हैं?'' तत्काल डॉ. कलाम ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा – ''तुम्हीं भारत की शक्ति हो।'' जब उन्होंने 'तुम कहा', तो वे देश की युवाशक्ति का आह्वान कर रहे थे। वर्तमान भारत का सबसे बड़ा बल उसकी युवाशक्ति है। दुर्बलताओं के विषय में डॉ. कलाम ने बहुत सुंदर उत्तर दिया। उन्होंने कहा, ''जिस देश के पास उद्देश्य एवं दृष्टि का अभाव हो, वह दुर्बल देश है।'' उक्त दोनों ही उत्तर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ये दोनों ही स्वामी विवेकानन्द के मौलिक विचारों से सम्बद्ध हैं। हम सब जानते हैं कि आज भारत विश्व का सबसे युवा देश है। युवा इन अर्थों में कि प्राप्त आंकड़ों के अनुसार भारतीय युवाओं की औसत आयु उनतीस वर्ष है। हमारे देश की पैंसठ प्रतिशत से अधिक जनसंख्या ३५ वर्ष से कम आयु की है। वहीं, भारत की पचपन प्रतिशत से अधिक जनसंख्या २५ वर्ष से कम आयु की है। अनुमानत: कहा जा सकता है कि देश में ८० करोड़ से अधिक युवा ३५ वर्ष से कम आयु के हैं। आज भारत के पास यह बृहद् जनसांख्यिकीय अनुकूलता है। विशेषज्ञों के अनुसार इससे भारत जनसांख्यिकीय लाभांश की ओर बढ़ेगा। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अब 'जनसांख्यिकी लाभांश' का क्या अर्थ है? यह पारिभाषिक शब्द है। सामान्य शब्दों में कहें, तो किसी देश की आर्थिक वृद्धि जो उस देश की जनसंख्या की आयु संरचना में परिवर्तन के कारण हो, उसे जनसांख्यिकी लाभांश कहते हैं। भारत पहले से ही इसका लाभ ले रहा है। हम तीव्रता से पाँच ट्रिलियन डॉलर वाली अर्थव्यवस्था बनने की ओर अग्रसर हैं। विशेषज्ञों के अनुसार यह जनसांख्यिकी लाभांश आगामी तीन दशकों तक यानि कि वर्ष २०५५ तक बना रहेगा।

वर्तमान में विश्व के किसी भी देश में ऐसा जनसांख्यिकी लाभ नहीं है, जहाँ ८० करोड़ से अधिक युवा महिला एवं पुरुष हों। परन्तु अभी हम इस विराट युवा शक्ति का प्रबन्धन कैसे करेंगे? इसके उपयोग न करने अथवा दुरुपयोग का तो प्रश्न ही नहीं उठता। हमारे पास वास्तव में एक ही विकल्प है। हमें विवेकपूर्ण ढंग से इसका प्रबन्धन करना होगा। आगामी कुछ दशकों में युवाशक्ति ही भारत को शीर्ष स्थान पर विराजमान करेगी।

दृष्टि एवं उद्देश्य

भारत स्वामी विवेकानन्द के हृदय के अत्यन्त निकट था। उनका एकमात्र उत्साहपूर्वक चिन्तन का केन्द्र भारत, भारत और केवल भारत था। वे भारत को पुन: नायक के

रूप में विश्व में अग्रणी देखना चाहते थे। अभी ही मैंने डॉ. कलाम के शब्दों को सन्दर्भ के रूप में प्रस्तुत किया। स्वामी विवेकानन्द हमें बार-बार भारत की दृष्टि एवं उद्देश्य का स्मरण करवाते हैं। इस देश के इतिहास का अवलोकन करने पर आप पाएँगे कि भारत का सदैव एक निश्चित उद्देश्य रहा है। विधाता ने भारत के लिए एक विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित किया है। वह उद्देश्य है – सम्पूर्ण विश्व को आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत करना। अतीत की ओर दृष्टिपात करने पर आप पाएँगे कि जब-जब ऐसी स्थितियाँ निर्मित हुई हैं, भारत ने सम्पूर्ण विश्व में आध्यात्मिक चेतना का प्रसार किया। मानव जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन किया। स्वामीजी के अनुसार वर्तमान एवं आगामी सदी में पुन: ऐसी परिघटना होगी। यही श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द के आगमन का मूल कारण है।

ऐसा नहीं है कि भारत के पास कोई दृष्टि नहीं है। हमें केवल विस्मृति हो गई है। स्वामी विवेकानन्द हमें यह स्मरण कराने आए थे कि विश्व को आध्यात्मिकता से आप्लावित करना ही भारत का उद्देश्य है। स्वामीजी यह स्पष्ट रूप से जानते थे। स्वामीजी ने भारत के स्वर्णिम अतीत एवं गौरवशाली भविष्य के सम्बन्ध में कहा है। उनके अनुसार भारत का गौरवशाली भविष्य अतीत की किंचित् कलुषता को धूमिल कर देगा। इस आकर्षक परिदृश्य की हम सभी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम ऐसे भारत को आकार लेते हुए देखना चाहते हैं। हमें अभी से ही इसके चिह्न दिखाई दे रहे हैं। इस विशाल विकास के लिए स्वामीजी की आकांक्षाएँ भारत की युवा शक्ति से है। स्वामीजी अपने विचारों की अमूल्य निधि सौंप गए हैं, जो युवाशक्ति को प्रेरित कर सकती है। प्रश्न उठता है कि क्या स्वामी विवेकानन्द को वर्तमान में उपलब्ध इस जनसांख्यिकी लाभांश का पूर्वानुमान हो गया था? यह प्रश्न इसलिए उठा है, क्योंकि उनकी समस्त आशाएँ युवावर्ग से थीं, जो इस भारत के भाग्यविधाता हैं।

भविष्योद्गाता स्वामीजी

इक्कीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में होनेवाले जनसांख्यिकी लाभांश को सम्भवत: स्वामी विवेकानन्द ने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में ही देख लिया था। हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं, क्योंकि स्वामी विवेकानन्द ने कई विषयों पर भविष्यवाणियाँ कीं, जो प्रत्येक सत्य सिद्ध हुई। इसके लिए मैं कुछ उदाहरण दे सकता हूँ। उन्होंने वैश्विक परिदृश्य में अविकसित देशों विशेषकर रूस के विकास पर भविष्यवाणी की थी। उन्होंने वर्ष १८९६ में कहा, 'पहले रूस का उदय होगा, फिर चीन और चीन के बाद भारत का उदय होगा और वह विश्व का नायक बनेगा। उन्होंने यूरोप के सम्बन्ध में कहा कि वह ज्वालामुखी के कगार पर बैठा है, जो ध्वंस की प्रतीक्षा में है। उनके यह कहने के दो दशक बाद ही प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। उन्होंने बेलूड़ मठ के सम्बन्ध में कहा कि यह स्थान विश्व में आध्यात्मिक सद्भाव एवं समन्वय के केन्द्र के रूप में विकसित होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी विवेकानन्द के समग्र जीवनकाल में उनके द्वारा की गयी भविष्यवाणियाँ सत्य सिद्ध हुईं। उनकी दूरदर्शिता, भविष्यवाणी कभी गलत नहीं हुई। इसी तरह स्वामी विवेकानन्द ने यह देख लिया था कि इक्कीसवीं सदी में भारत में जनसांख्यिकी लाभांश जैसी अनुकूल परिस्थिति निर्मित होगी। स्वामी विवेकानन्द के आग्नेय विचारों से स्त्री-पुरुष प्रेरित हुए। स्वामीजी के आह्वान पर उन्होंने निजी सुखों का त्याग कर दिया और स्वातन्त्र्य संग्राम में कूद पड़े। यही कारण है कि पचास वर्ष के भीतर ही भारत स्वतन्त्र हो गया। स्वामी विवेकानन्द के त्याग एवं सेवा के विचारों से अनुप्राणित युवा शक्ति के कारण ही देश पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त हो सका।

विरासत

वर्तमान में २१वीं सदी में ऐसा पुन: होने जा रहा है। ऐसा हो रहा है। अब से कुछ दिन पूर्व ही मुझे विवेकानन्द युवा महा मंडल के कार्यक्रम में सम्मिलित होने का अवसर मिला। मुझे स्वामी विवेकानन्द के विचारों से प्रेरित हजारों युवाओं को देखकर अपार प्रसन्नता हुई। आज भारत में स्वामी विवेकानन्द के विचारों पर आधारित विभिन्न संस्थाएँ युवाओं के लिए कार्य कर रही हैं। स्वामी विवेकानन्द संगठन एवं संगठित रूप से कार्य करने में विश्वास रखते थे। स्वामीजी अपने पीछे यह महान विरासत छोड़ गए हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति तक इस देश की युवाशक्ति के सम्मुख सामूहिक लक्ष्य था, जिसके लिए युवाओं ने संगठित रूप से कार्य किया और वास्तव में इसी से भारत को स्वतन्त्रता मिली। किन्तु दुर्भाग्यवशात् स्वतन्त्रता के बाद यह संगठित शक्ति विच्छिन्न हो गयी। जनसमुदाय में स्वार्थ की वृत्ति

दिखाई देने लगी। वे राष्ट्रीय भाव से विमुख होने लगे। किन्तु विगत दस-पन्द्रह वर्षों से पुन: परिवर्तन दिखाई दे रहा है। विशेष रूप से वर्ष २०१३ में स्वामी विवेकानन्द की १५०वीं जन्म-जयन्ती समारोह के उपरान्त स्वामीजी पुन: भारत के विकास केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित हो गए हैं। शीर्ष राजनीतिक पदाधिकारी से लेकर जनसामान्य तक प्रत्येक स्तर पर स्वामीजी के विचारों एवं आदर्शों पर चिन्तन-मनन किया जाता है। जन-मन उनसे प्रेरणा ग्रहण करता है।

तीन महत्त्वपूर्ण व्याख्यान

एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यहाँ उठता है। स्वामीजी के सेवादर्श का प्रसार युवाओं में किस तरह किया जाए? वर्तमान में यह प्रासंगिक है। स्वामीजी के आधारभूत विचार क्या हैं? यदि हम सेवा के परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द के विचार जानना चाहते हैं, तो हमें उनके द्वारा प्रदत्त तीन महत्त्वपूर्ण व्याख्यानों को पढ़ना होगा। ये तीनों व्याख्यान 'लेक्चर्स फ्रॉम कोलम्बो टू अलमोड़ा' नामक अँग्रेजी पुस्तक में संग्रहित हैं। इसका अनुवाद बांगला में 'भारते विवेकानन्द' नामक शीर्षक से और हिन्दी में 'भारतीय व्याख्यान' नामक शीर्षक से प्रकाशित है। सभी भारतीय भाषाओं में यह पुस्तक उपलब्ध है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। रोचक बिन्दु यह है कि स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज, युवाओं को इस पुस्तक को पढ़ने के लिए प्रेरित करते थे। वास्तव में भारत क्या है, हिन्दू सनातन धर्म का वास्तविक गौरव कहाँ है तथा पश्चिम के अनुकरण के बिना भारत अग्रणी कैसे हो सकता है, यह जानने के लिए प्रत्येक भारतीय को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

भारत की आधारभूत समझ विकसित करने हेतु मैं इस पुस्तक के तीन व्याख्यानों को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। ये हैं – १. मेरी क्रान्तिकारी योजना २. भारत का भविष्य ३. हमारा प्रस्तुत कार्य। स्वामीजी द्वारा प्रदत्त ये तीनों व्याख्यान भारतीयों के लिए योजना-प्रारूप है, जिसके अनुरूप चिन्तन करते हुए स्वयं को रूपायित किया जा सकता है। ये तीनों व्याख्यान अतुलनीय हैं। वर्तमान में भी ज्वलन्त प्रासंगिक हैं।

स्वामीजी ने बार-बार राष्ट्रहित हेतु त्याग एवं सेवा पर बल दिया है। भारत का निर्माण कैसे हो? तीनों ही व्याख्यानों का केन्द्रीय विषय यही है। मेरी अनन्य अभिलाषा है कि स्वामी विवेकानन्द द्वारा दिए गए इन तीनों व्याख्यानों के आलोक में प्रत्येक राजनेता, प्रशासनिक अधिकारी, वैज्ञानिक, शिक्षक, विद्यार्थी, माता-पिता एवं निर्धनों को शिक्षित किया जाए। भारत के आगामी तीन दशकों के लिए यह अत्यावश्यक है। कहा जाता है कि गर्म लोहे पर ही चोट की जानी चाहिए। इसका अर्थ है कि युवाओं को इन विचारों से ओत-प्रोत किया जाए, ताकि वे नव भारत के निर्माण हेतु स्वयं को ढाल सकें।

यदि हम अवलोकन करें, तो पाएँगे कि इन व्याख्यानों में स्वामी विवेकानन्द ने दो मार्ग बताए हैं, जिसके अनुरूप युवा जीवन-यापन कर सकते हैं। या तो वे स्वार्थकेन्द्रित जीवन व्यतीत कर सकते हैं अथवा राष्ट्र-निर्माण हेतु समर्पित जीवन-यापन कर सकते हैं। स्वार्थकेन्द्रित जीवन-यापन करना, निजी सुखों के प्रति आसक्ति एवं स्वयं की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ही जीवन जीना, अपनी ऊर्जा का क्षय करना है। इसके विपरीत राष्ट्र समर्पित जीवन है। इसके मूल में राष्ट्रीय कल्याण की भावना निहित है। जीवन के केन्द्र में दिव्यता हो, यह सर्वोच्च आदर्श है। इसी भाव के साथ सेवा की जाए। सभी कार्यों में दिव्यता की अभिव्यक्ति हो, यही परम लक्ष्य है। शास्त्रों का यही उपदेश है। स्वामी विवेकानन्द का भी यही संदेश है। श्रीरामकृष्ण देव का भी यही संदेश है। किन्तु इस तरह का जीवन-यापन करना वर्तमान युग के युवाओं के लिए कठिन लगता है। यह कठिन है, किन्तु नि:स्वार्थ जीवन की ओर उठाया गया यही पहला कदम है।

हम राष्ट्र-केन्द्रित जीवन-यापन पहले कदम के रूप में कर सकते हैं और वहाँ से आध्यात्मिक जीवन की ओर अग्रसर हो सकते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने युवाओं को देशहित में जीवनयापन करने पर बल दिया है। प्राय: मुझे यह अनुभव होता है कि स्वार्थकेन्द्रित जीवन से राष्ट्रकेन्द्रित जीवन की ओर बढ़ने की यात्रा 'मनुष्य निर्माण' की यात्रा है। स्वामी विवेकानन्द ने बार-बार मनुष्य निर्माण पर जोर दिया है। ''कोई मनुष्य कैसे बन सकता है?'' स्वामीजी ने स्वार्थी व्यक्ति को पशुवत् कहा है। जिस व्यक्ति में संवेदना न हो, स्वामीजी ने उन्हें 'दुरात्मा' कहा है। दूसरों के कल्याण के लिए, जो अपना रक्त बहा दे, वही 'महात्मा' है। कैसा अद्भुत विचार है ! यह रूपान्तरण कैसे सम्भव है?

सेवा

स्वामी विवेकानन्द ने सेवा पर बल दिया है। क्यों? विवेकानन्द कहते हैं, सर्वप्रथम किसी की वेदना की अनुभूति करने की क्षमता विकसित होनी चाहिये। हमने बीते दशकों

में इस दिशा में पर्याप्त प्रगति की है, किन्तु हमें और आगे बढ़ना है। मेरा अनुमान है कि आज भी भारत की पन्द्रह से बीस प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रही है। मेरे आँकड़े पूर्ण रूप से सही नहीं होंगे, पर यह तथ्य है कि आज बहुत बड़ी संख्या में लोग जीवन के लिए संघर्ष कर रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द ने यह मंत्र दिया है – अनुभव करो, अनुभव करो, अनुभव करो। निर्धनों की पीड़ा का अनुभव करो। हम उनके लिए क्या कर सकते हैं? अनुभव की तीव्रता ऐसी हो कि तुम्हारा सिर चकराने लगे, तुम रात्रि को सो न सको। इसी भाव से व्यक्ति स्वार्थरहित जीवन की ओर अग्रसर होता है। हमारे युवाओं को ऐसे भाव आत्मसात् करने चाहिए। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, केवल अनुभव ही पर्याप्त नहीं है। कोई अनुभव करके चुपचाप बैठ गया। इससे कार्य नहीं होगा। अनुभव के साथ कार्यान्वयन की योजना होनी चाहिए। इस देश के युवाओं को रचनात्मक, प्रगतिशील होना चाहिये। उन्हें पुरुषार्थी और बुद्धिमान होना चाहिये। स्वामीजी कहते हैं, निर्धनों की सहायता किस प्रकार हो सके इसकी योजना होनी चाहिए। किन्तु केवल योजना ही पर्याप्त नहीं है। योजना को कार्यरूप में परिणत करना होगा। जब आप इन योजनाओं को कार्यान्वित करेंगे, तो विभिन्न बाधाएँ आएँगीं। स्वामीजी पूछते हैं, क्या तुममें इन बाधाओं का सामना करने की क्षमता है? यदि सम्पूर्ण जगत हाथ में तलवार लेकर तुम्हारे विरोध में खड़ा हो, क्या तब भी तुम अपने आदर्श पर अडिग रह सकते हो? जिसे तुम उचित मानते हो, वह कर सकते हो? यदि हाँ, तो तुम सच्चे देशभक्त हो। तब तुम हमारे आदमी हो।

इसी प्रकार देश के युवा संगठित हो सकते हैं। स्वामीजी ने एक अन्य भविष्यवाणी की है। उनके अनुसार भारत का भविष्य मुख्यत: तीन कारकों पर निर्भर करता है : संगठन, आकांक्षाओं का समन्वय एवं शक्ति संग्रह। स्वामीजी युवाओं को संगठित होकर कार्यरत देखना चाहते थे। जब हम एक निर्दिष्ट सामूहिक उद्देश्य के लिए कार्य करते हैं, तो आकांक्षाओं का समन्वय सरल हो जाता है। वह उद्देश्य क्या हो? राष्ट्रहित ही वह उद्देश्य होना चाहिये, अन्य कुछ भी नहीं। जब देश के अस्सी करोड़ से अधिक नर-नारी राष्ट्र-निर्माण के लिए कार्य करेंगे, तो अपार ऊर्जा की सृष्टि होगी। इससे ही भारत में परिवर्तन होगा।

वर्तमान में रामकृष्ण मिशन यही कार्य कर रहा है। यह क्षुधा-पीड़ितों, रोगियों को भोजन देकर 'अन्नदान' कर रहा है। रोगियों की चिकित्सा हेतु चिकित्सालय संचालित कर 'प्राणदान' कर रहा है। विद्यालय एवं महाविद्यालयों के संचालन द्वारा 'शिक्षादान' कर रहा है। जन-जन को ज्ञान प्रदान कर 'ज्ञानदान' कर रहा है। हमारे शास्त्रों में ऐसे चार प्रकार के दान का उल्लेख है। विगत एक सौ पचीस वर्षों से मिशन द्वारा यह कार्य किया जा रहा है। आज मिशन से प्रेरित होकर अनेक लघु संस्थाएँ भी कार्यरत हैं।

मन्त्र

१८९७ में स्वामीजी ने कहा था कि आगामी पचास वर्षों के लिए भारतमाता ही हमारी आराध्य देवी हों। हमारे समस्त क्रिया-कलापों के मूल में वही हों। कुछ काल के लिए सभी देवी-देवता हमारे मस्तिष्क से लुप्त हो जायें। हमारी जाति के लिए, हम सबके लिए यही एक मात्र देवी हों।

आज पुन: हमें इस मन्त्र को स्मरण करने की आवश्यकता है। हम भारतीयों को इसके प्रति अधिक संवेदनशील होना होगा।

युवाशक्ति का प्रबन्धन ही भारत के भाग्य का मार्ग प्रशस्त करेगा। इसके लिए हमारा मन्त्र क्या हो? १८९७ में स्वामी विवेकानन्द ने जिस मन्त्र का आह्वान किया, उसे देश के युवाओं को प्रेरित करने के लिये पुन: उद्घोष करना होगा। आगामी तीन दशकों के लिए भारत ही हमारा ध्येय हो। युवाशक्ति के लिए प्रथम और अन्तिम उद्देश्य भारत ही हो। मैं जब भी किसी शैक्षणिक संस्थान में जाता हूँ, तो युवा साथियों को स्वामी विवेकानन्द द्वारा मैसूर महाराजा को लिखी यह बात अवश्य बताता हूँ। स्वामीजी लिखते हैं, जीवन बहुत छोटा है। संसार क्षणभंगुर है। जो दूसरों के लिए जीते हैं, वही वास्तव में जीते हैं। अन्य सभी जीवित होते हुए भी मृतक के समान हैं।

भावी पीढ़ियों के लिए यह स्वामीजी का अमूल्य उपहार है। उन्होंने इस प्रकार युवाशक्ति को सर्वप्रथम राष्ट्र-हित के लिए कार्य करने हेतु प्रेरित किया और इसी दिशा में एक कदम आगे बढ़ते हुए जीवन के सभी कार्यों में दिव्यता की, परम सत्ता की उपस्थिति का बोध करते हुये मानवता की सेवा की जा सकती है। ○○○

(रामकृष्ण मिशन कल्चर बुलेटिन, अगस्त,२०२३ से साभार)

विवेकानन्द जयन्ती विशेष

स्वामी विवेकानन्द की प्रखर राष्ट्रीय चेतना

उत्कर्ष चौबे

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

आधुनिक विश्व को भारतीय परम्परा और तत्त्वज्ञान से परिचित कराने और प्रभावित करनेवाले भारतीयों में सर्वाधिक योगदान स्वामी विवेकानन्द का है। अपने प्रकाण्ड ज्ञान, प्रखर तर्कशक्ति, विशुद्ध, निष्कलंक चरित्र, अटूट आत्मविश्वास और अथक परिश्रम से उन्होंने ऐसा चमत्कार कर दिखाया, जो पिछली अनेक शताब्दियों में नहीं हो सका था। उन्होंने भारतीय जन-मानस में जड़ जमाए बैठे पश्चिमी गर्व के उन्माद को ध्वस्त कर दिया। भारतीयों की हीन-ग्रंथि को छिन्न-भिन्न कर दिया। उन्होंने थके-हारे, शिथिल, क्लान्त, दुर्बल भारत को साहस के साथ खड़े होकर अपनी अमूल्य विरासत पर गर्व करना सिखाया।

शिकागो धर्म-सम्मेलन में संसार भर से आए धर्मधुरन्धरों के सामने भारतीय विचार और हिन्दू धर्म की उज्ज्वल पताका फहराने के समाचारों ने हर भारतीय का सीना गर्व से चौड़ा कर दिया। शिकागो धर्मसभा और उसके बाद अमेरिका आदि अनेक देशों में उनके व्याख्यानों की जो धूम मची, उसने पश्चिमी विद्वानों, पत्रकारों, धर्मगुरुओं के मस्तिष्क में भारतीय मनीषा को लेकर जमी काई को हटाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इधर भारतीय लोगों का भी इस युवा संन्यासी पर ध्यान तब गया, जब अमेरिका से वे अपार कीर्ति और अकल्पनीय सम्मान साथ में लेकर भारत भूमि पर लौटे और विश्व धर्मसभा में उनके मंत्रमुग्ध कर देनेवाले भाषणों की गूँज और श्रोताओं की तालियों की गड़गड़ाहट यहाँ तक पहुँची। भारतीयों के मानस पटल पर गहराई तक चिपकी हुई पश्चिमपरस्ती को देखकर कभी-कभी लगता है कि स्वामीजी ने यदि विदेशों में अपनी विद्वत्ता का झंडा नहीं फहराया होता, तो भारत में भी शायद ही ये इतने पूजनीय और महत्त्वपूर्ण होते। भारतीय आत्मा को अक्षुण्ण रखते हुए सार्वभौमिक विचारों से संवाद इनकी प्रमुख विशेषता रही है। उनका स्वप्न सनातन की नींव पर एक सशक्त और समृद्ध भारत का पुनर्निर्माण करना था, जो सम्पूर्ण संसार का पथप्रदर्शन करने में समर्थ हो।

प्रखर राष्ट्रीय चेतना और युगबोध

इतिहास, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, साहित्य, कला आदि मानविकी विद्याओं से स्वामीजी का जीवन्त सम्पर्क रहता था। संन्यासी सामान्यत: इसे अविद्या और लोकैषणा की वस्तु मानकर इन विषयों के प्रति उदासीन रहते हैं। किन्तु स्वामीजी की प्रखर राष्ट्रीय चेतना और युगबोध उनको इन विषयों से असम्पृक्त नहीं रहने देता था। भारत और पश्चिमी देशों की तुलना करते हुए वे यथार्थपरक और तथ्यात्मक बात कहते हैं। 'हिन्दू और यूनानी' नामक लेख में वे लिखते हैं – ''यूनानी राजनीतिक स्वतन्त्रता की खोज में था। हिन्दुओं ने सदैव आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की खोज की। दोनों ही एकपक्षीय हैं। भारतीय राष्ट्र की रक्षा या देशभक्ति की अधिक चिन्ता नहीं करता, वह केवल अपने धर्म की रक्षा करेगा, जबकि यूनानियों में और यूरोप में भी देश पहले आता है। केवल आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की चिन्ता करना और सामाजिक स्वतन्त्रता की चिन्ता न करना, एक दोष है, किन्तु इसका उलटा होना तो और भी बड़ा दोष है। आत्मा और शरीर दोनों की स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न किया जाना चाहिए।''[१]

भारत की दुर्दशा का एक बड़ा कारण वे उस मध्यकालीन देश को मानते हैं, जो सामाजिक बन्धनों का कारण बना। अत: वे इस बात का उल्लेख करते हुए कई बार क्षुब्ध हो उठते हैं। वे अपने प्रिय शिष्य आलासिंगा पेरुमल को अमेरिका से २९ सितम्बर, १८९४ को लिखे एक पत्र में कहते हैं – 'विकास के लिए पहले स्वाधीनता चाहिए। तुम्हारे पूर्वजों ने पहले आत्मा को स्वाधीनता दी थी, इसलिए धर्म की उत्तरोत्तर वृद्धि और प्रगति हुई, पर देह को उन्होंने सैकड़ों बंधनों के फेरे में डाल दिया, बस इसी से समाज का विकास रुक गया। पाश्चात्य देशों की स्थिति ठीक इसके विपरीत है। समाज में बहुत स्वाधीनता है, किन्तु धर्म में कुछ नहीं। इसलिये वहाँ धर्म बड़ा अधूरा रह गया, पर समाज ने भारी उन्नति कर ली।'[२]

आर्य आक्रमण के सिद्धान्त को नकारना

पश्चिमी विद्वानों द्वारा स्थापित किए गए भारत में आर्य आगमन के आरोपित सिद्धान्त को चुनौती देते हुए वे उन भारतीय विद्वानों को भी आड़े हाथ लेते हैं, जो पश्चिम की इस मनगढ़ंत अवधारणा का आँखें मूँद कर अनुगमन करते हैं। 'प्राच्य और पाश्चात्य' विषयक लेख में वे लिखते हैं – ''यूरोपीय विद्वानों का यह कहना कि आर्य कहीं से घूमते-फिरते आकर भारत में जंगली जाति को मार-काट कर और जमीन छीन कर स्वयं यहाँ बस गए, केवल अहमकों की बात है। आश्चर्य तो इस बात का है कि हमारे भारतीय विद्वान भी उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाते हैं और यही सब झूठी बातें हमारे बाल-बच्चों को पढ़ाई जाती हैं, यह घोर अन्याय है। यूरोपियनों को जिस देश में अवसर मिलता है, वहाँ के मूल निवासियों का नाश करके स्वयं प्रसन्नता से रहने लगते हैं, इसलिए उनका कहना है कि आर्य लोगों ने भी वैसा ही किया है। यूरोप का उद्देश्य है – सबका नाश करके स्वयं अपने को बचाए रखना। आर्यों का उद्देश्य था – सबको अपने समान करना अथवा अपने से भी बड़ा बनाना।''[३]

स्वामीजी भारत में आर्यों के आक्रमण की अवधारणा को तो असंगत बताते ही हैं, वे यूरोपियन लोगों की क्रूर पाशविकता और आर्यों के श्रेष्ठ जीवन मूल्य का भी उल्लेख किया करते थे। किन्तु विडम्बना यह है कि स्वतन्त्रता के ७० वर्ष बाद तक हमें आर्य आक्रमण के सिद्धान्त ही पढ़ाये गये और इसके माध्यम से तथाकथित सरकार व वामपंथी शिक्षाविदों ने भारतीय के मन-मस्तिष्क में हीनता व गुलामी के बीज ही अंकुरित करने का काम किया।

स्वार्थ को जीतना ही सभ्यता

हम जानते हैं कि मनुष्य की विकास-यात्रा वस्तुत: उसकी सभ्यता के विकास की कथा है, जो वह निरन्तर अर्जित करता रहा है। किन्तु प्रश्न यह है कि सभ्यता क्या है? और विकास की सही दिशा कौन-सी है? समाजशास्त्रियों ने सभ्यता-संस्कृति की अनेक परिभाषाएँ दी हैं, जो पिछली एक-दो शताब्दियों से अधिक पुरानी नहीं हैं। स्वामीजी स्वयं इस प्रश्न से टकराते हैं और भारतीय मनीषा के अनुसार उत्तर देते हुए कहते हैं – ''मैंने देश के कोने-कोने में प्रश्न किया कि सभ्यता की परिभाषा क्या है और मैंने यह प्रश्न अनेक अन्य देशों में भी पूछा है। कभी-कभी उत्तर मिला, जो कुछ हम हैं, यही सभ्यता है। ... कोई राष्ट्र हो सकता है, समुद्र की लहरों को जीत ले, भौतिक तत्त्वों का नियन्त्रण कर ले, जीवन की उपयोगितावादी सुविधाओं को पराकाष्ठा तक विकसित कर ले, किन्तु फिर भी सम्भव है कि वह कभी यह अनुभव नहीं कर पाए कि सर्वोच्च सभ्यता इसमें होती है, जो अपने स्वार्थ को जीतना सीख लेता है। पृथ्वी के किसी भी देश की अपेक्षा यह स्थिति भारत में अधिक उपलब्ध है, क्योंकि वहाँ शरीर-सुख सम्बन्धी भौतिक स्थितियाँ अध्यात्म के अधीनस्थ मानी जाती हैं ...।''[४]

मानवीय चेतना की उच्चतर अवस्था

आधुनिक भारत में पश्चिमी विचारकों ने एक और मूढ़ता को जन्म दिया। यहूदी, ईसाई, इस्लाम आदि सभी सामी मजहब एकदेवोपासक हैं। ये पश्चिमी विद्वान एकदेवोपासना को चेतना के विकास की उन्नत अवस्था और बहुदेवोपासना को अविकसित आदिम अवस्था मानते हैं। भारत जैसे प्राचीन देशों की प्रकृति पूजा और बहुदेवोपासना को ये पैगनवाद कहते हैं तथा पैगनवाद इनकी दृष्टि में अविकसित, निम्न और पिछड़ा होने का चिह्न है। इन पश्चिमी विचारकों के प्रभाव में आए भारतीय विद्वानों ने भी हिन्दू धर्म को विकसित सिद्ध करने के लिए वेदों और उपनिषदों की ऐसी व्याख्याएँ करनी प्रारम्भ कर दी कि वास्तविक हिन्दू धर्म एकदेवोपासक ही है। बहुदेवोपासना मानो इसकी विकृति हो। किसी की देखा-देखी में १९वीं सदी में ही भारतीय पुनर्जागरण के लिए होनेवाले विविध प्रयासों में हिन्दू धर्म के सम्प्रदायीकरण की छाया देखी जा सकती है। श्रेष्ठ मूल्य, नैतिक आदर्श और

देशभक्ति की उत्कट भावना के बावजूद ब्राह्म समाज, प्रार्थना सभा, आर्य समाज जैसे संगठन इसका ज्वलन्त प्रमाण हैं। किन्तु विवेकानन्द की गहन दृष्टि ने इस बहुदेवोपासना को हेय न मानकर सामी मजहबों के समक्ष इसे दृढ़तापूर्वक उच्चतर अवस्था माना। उन्होंने इस विविधता को हिन्दू धर्म का वैशिष्ट्य और वैश्विक धर्म बनने की सामर्थ्य मानते हुए हिन्दुत्व को समझने की एक नई दृष्टि दी। वे कहते हैं – ''मुझे ऐसा एक भी वर्ष स्मरण नहीं, जबकि भारत में अनेक नवीन सम्प्रदाय उत्पन्न न हुए। जितनी ही उद्दाम धारा होगी, उतने ही उसमें भँवर और चक्र उत्पन्न होंगे, यह स्वाभाविक है। इन सम्प्रदायों को क्षय का सूचक नहीं समझा जा सकता, वे जीवन के चिह्न हैं। होने दो इन सम्प्रदायों की संख्या में वृद्धि, इतनी वृद्धि कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति ही एक सम्प्रदाय हो जाए, हर एक व्यक्ति। इस विषय को लेकर कलह करने की आवश्यकता ही क्या है?''[५]

यहाँ हमें यह जानकर प्रसन्न और कृतज्ञ होना चाहिए कि स्वामीजी जो बात एक शताब्दी पहले कह रहे थे, कतिपय विचारशील लोग उसे अब स्वीकार करने लगे हैं। इस कथित पैगनवाद में निहित अनेकान्तता मानव के विकास की आदिम स्थिति नहीं, वरन् मानवीय चेतना की वह उच्चतर अवस्था है, जो मनुष्य मात्र को वैचारिक स्वतन्त्रता का अधिकार देती हैं। यह चयन की बहु, बल्कि अनन्त विकल्पात्मकता एक अति विकसित और उदार परम्परा में ही सम्भव है। जड़ और संकीर्ण समाजों में बहुदेवोपासना का ऐसा धार्मिक प्रजातन्त्र सम्भव ही नहीं है। इधर पिछले कुछ दशकों में आधुनिक विचारकों ने उत्तर आधुनिकता द्वारा प्रस्तावित बहुलतावादी और विकेन्द्रीयता के सिद्धान्त के प्रभाव में अब जाकर पैगनवाद की विशेषताओं पर दृष्टिपात किया है।

भारतीयों का श्रेष्ठ स्वरूप

धर्म, अध्यात्म, योग आदि पर तो उनके विचारों का बहुत उल्लेख होता रहा है, किन्तु धर्मेतर लौकिक विषयों पर उनके मौलिक विचारों का उल्लेख नहीं किया जाता। जबकि यह तथ्याधारित है कि आधुनिक भारतीयता का श्रेष्ठ और समीचीन स्वरूप सबसे पहले स्वामी विवेकानन्द ने ही दिया। हम इसे समझ-बूझ नहीं पाए, तो उसका कारण भी यह रहा कि किसी प्राचीन राष्ट्र के पुनर्निर्माण का मॉडल कैसा होना चाहिए, उसका ब्लूप्रिन्ट कैसा होगा, यह हम उतना ही जानते-मानते रहे, जैसा हमें पश्चिमी विद्वानों ने सिखाया, पढ़ाया-रटाया।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं, वास्तविकता है कि आधुनिक भारत के निर्माण में यद्यपि अनेक महापुरुषों का अकल्पनीय योगदान है, किन्तु विवेकानन्द इस माला के सुमेरु हैं। वे सच्चे अर्थों में आधुनिक भारत के राष्ट्रपुरुष हैं। ○○○

सन्दर्भ सूची : १. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड १, पृ.२८६ **२.** वही, खं. ३,पृ.३१७ पत्रावली **३.** वही, खण्ड १०, पृ. ११०-११२ **४.** वही, खं. १, पृ. २६६, क्या भारत तमसाच्छादित देश है? **५.** वही, खं १०,पृ. ५ – मेरा जीवन तथा ध्येय

पुरखों की थाती

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।।८५४।।
(मनु.) विदुर

– मनुष्य को अपने चरित्र की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए, धन तो आता-जाता रहता है। वस्तुत: निर्धन व्यक्ति दुर्बल नहीं, बल्कि चरित्रहीन मनुष्य मृतक के समान है।

व्रते विवादं विमतिं विवेके
सत्येऽतिशंकां विनये विकारम्।
गुणेऽवमानं कुशले निषेधं
धर्मे विरोधं न करोति साधुः।।८५५।।
(दशावतार.)

– किसी के गृहीत व्रत पर विवाद करना, विवेक के विपरीत बुद्धि देना, सत्य पर अति शंका करना, किसी के विनय-भाव को विकृत बताना, गुण का अपमान करना, कुशल व्यक्ति को हटाना और धर्म अर्थात् कर्तव्य में विरोध करना – सज्जन लोग ऐसे आचरण नहीं करते।

शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहापोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः।।८५६।।
(महाभा.)

– सेवा की इच्छा, सुनना, ग्रहण करना, धारण करना (समझना), विचार द्वारा निश्चय, क्रियान्वन तथा तत्त्वज्ञान, ये बुद्धि के (सात) गुण हैं।

रामगीता (५/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

धृतराष्ट्र इस बात पर विश्वास ही नहीं करता कि इस युद्ध में उसकी पराजय होगी। उसके पीछे एक छिपा हुआ विचार था, जिसने उसके मन को यह आश्वस्त कर दिया था कि व्यासजी कुछ भी क्यों न कह रहे हों, लेकिन विजय तो मेरे ही पुत्र की होगी। दुर्योधन घनीभूत अभिमान है। दुश्शासन मूर्तिमान काम है। यह अनोखा पूरा परिवार है। यह विश्वास उसे क्यों है? यह विश्वास उसे इसलिए है कि भले ही मेरे पुत्र में अनेक अवगुण हों, लेकिन पितामह भीष्म, जो हमारे कुल के सर्वश्रेष्ठ हैं, महाब्रह्मचारी हैं, महात्यागी हैं और जिनको यह आशीर्वाद मिला हुआ है कि उनकी मृत्यु तभी होगी, जब वे स्वयं चाहेंगे, तो इच्छामृत्यु का वरदान जिन पितामह को प्राप्त है, वे हमारी ओर से युद्ध कर रहे हैं और युद्ध करते हुए मृत्यु की आकांक्षा तो कोई करता नहीं। तो न तो भीष्म की मृत्यु होगी और न तो हमारी सेना हारेगी।

उधर का सेनापति अगर धृष्टद्युम्न है, तो वह तो मरणधर्मा है। मानो यह एक ऐसा गणित है, जिसके द्वारा वह अपने को आश्वस्त बनाए हुए है। लेकिन उस समय वह चौंक पड़ता है, जब उसे सुनाई पड़ता है कि नहीं, भीष्म गिर गये। उसका दुर्भाग्य क्या है? क्योंकि वह भीष्म की महानता, वरदान, सबको देख रहा था। उसको यह पता था कि भीष्म पितामह को इच्छामृत्यु का वरदान प्राप्त है। बिना उनकी इच्छा के उनकी मृत्यु नहीं होगी। पर वही दुर्भाग्य उसके लिए विपत्ति बन गया। उसने अगर इस पर ध्यान दिया होता कि भीष्म पितामह को इच्छामृत्यु का वरदान तो है, पर इच्छा करानेवाला तो उधर रथ पर बैठा हुआ है। वह जब चाहेगा, इच्छा उत्पन्न कर देगा। बस, ईश्वर को भूल गया। ईश्वर उधर है। हुआ भी यही। वर्णन भी आता है कि दसवें दिन संहार करते-करते भीष्म पितामह को ग्लानि होने लगी कि मैं यह क्या कर रहा हूँ? मैं यह जानते हुए भी कि यह अन्याय का पक्ष है, इसको धर्म मानकर मैं युद्ध कर रहा हूँ और नित्य न जाने कितने योद्धाओं का संहार कर रहा हूँ, कितनी अनुचित दिशा में मेरे जीवन का दुरुपयोग हो रहा है। इससे अच्छा तो यही है कि मेरी मृत्यु हो जाये। इच्छामृत्यु का वरदान था और श्रीकृष्ण ने इच्छा करा दिया। उनकी इच्छा हुई और तब उनकी मृत्यु का भी योग बना। इन कथाओं का सन्दर्भ यही है। रामायण में पात्रों और चरित्रों के दिव्यतम रूप का सन्दर्भ बहुत ही विस्तार से है और उसका आनन्द ही अलग है।

मुझे अभी जब पद्मभूषण के रूप में एक उपाधि-अलंकरण की घोषणा की गई, तो चारों ओर से, देश-विदेश से, विभिन्न नगरों से दिन-रात बधाइयों के टेलीफोन आ रहे हैं। पर एक व्यक्ति ने मुझसे पूछा आपको कैसा लगा? अब यह कहूँ कि मुझे तो बिल्कुल अच्छा नहीं लगा, तो यह शायद केवल एक दम्भ होगा। श्रद्धेय स्वामीजी से भी वार्तालाप हुआ, तो कभी उपाधि को लेकर बधाई का आदान-प्रदान नहीं हुआ। उन्होंने एक बार भी मुझसे नहीं कहा कि पद्मभूषण से विभूषित हुए हैं, आपको बधाई है। वहाँ पर कार्यक्रम को जो लोग संचालित कर रहे थे, उन्होंने स्वामीजी से कहा कि पहले आप बधाई दीजिए। महाराज ने बहुत संतुलित रूप में वह प्रस्तुत किया। पर मुझसे कोई पूछे, तो मैं कहूँगा

कि मुझे बहुत अच्छा लगा। पर उसमें मेरा ध्यान उस शब्द की ओर जाता है और वही मेरी प्रसन्नता का कारण है। वह जिन लोगों को दिया गया है, उनके नाम के साथ उनकी विशेषता की ओर संकेत किया गया है कि ये नेत्र विशेषज्ञ हैं या सामाजिक सेवा के विशेषज्ञ हैं। पर मेरे नाम के साथ जो जोड़ा गया है, उसमें कहा गया है, 'रामकथा वाचक' तो मैंने कहा कि उपाधि तो रामकथा के प्रति श्रद्धांजलि है, मेरे प्रति कहाँ है। मैं तो एक पात्र हूँ। वस्तुत: रामकथा ऐसी है कि उसके प्रति आप कोई भी श्रद्धा निवेदित करें, महिमा गावें, तो वह कम ही है।

सचमुच यदि आप रामायण के अन्तरंग में बैठकर रामकथा की विलक्षणता का रसास्वादन करेंगे, तो आप समझ सकेंगे कि जीवन का कोई ऐसा प्रश्न नहीं है, कोई ऐसी समस्या नहीं है, जिसका समाधान आपको मानस में न मिले। मानस में इस सत्य को एक सैद्धान्तिक रूप में ही नहीं कह दिया गया कि अहंकार बुरा है, मोह बुरा है, ममता त्याज्य है, अपितु उसकी त्याग करने की एक क्रमिक पद्धति का वर्णन किया गया है। कल कथा के बीच में ही जो प्रसंग अधूरा छोड़ दिया गया था, मैं आशा करता हूँ कि आप उससे जुड़कर कथा को समझने का प्रयास करेंगे। रामकथा को केवल मनोरंजन के रूप में और एक क्षणिक आनन्द के लिए यदि आप सुनते हैं, तो आप उसका बहुत कम लाभ ले रहे हैं, कुछ खो रहे हैं।

भगवान श्रीराम की जो यात्रा है। अब उस यात्रा को आप कई संदर्भों में, कई रूपों में देख सकते हैं। उस यात्रा का एक सन्दर्भ यह है आप क्रम से विचार करके देखिए। भगवान की अयोध्या से मिथिला तक की यात्रा में उस युग के कई महान पात्र जुड़े हैं। एक गुरु वशिष्ठ तो हैं ही। उन्होंने ही महाराज दशरथ को प्रेरित किया। दशरथजी तो आनाकानी कर रहे थे। दूसरे महापुरुष हैं महर्षि विश्वामित्र। तीसरे महापुरुष हैं स्वयं महाराज जनक और चौथे महापुरुष भगवान के आवेशावतार कहें, तो भगवान परशुराम जी। अब उन सभी महापुरुषों के सन्दर्भ से अहंकार, ममता की जो बातें बताई गईं, इसके सन्दर्भ को थोड़ा गहराई से सुनें और इसको समझने की चेष्टा करें। कल वह वाक्य आपके सामने कही गई थी, जो विनय पत्रिका में गोस्वामीजी ने कही है। विश्वामित्रजी ने संसार में सब कुछ पा लिया, ब्रह्मर्षि के रूप में जगत-पूज्य वन्दनीय हो गये, किन्तु वे वन्दनीय होकर, कुछ पाने के बाद भी अपनी असमर्थता का अनुभव करते हैं। जब वह यज्ञ नष्ट होने लगता है, तो उनको स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे स्वयं ताड़का, मारीच और सुबाहु का वध करने में असमर्थ हैं। अब उस शब्द पर ध्यान दें। गोस्वामीजी से पूछा गया, विश्वमित्र कौन-सा यज्ञ कर रहे थे, तो वह विनयपत्रिका का वाक्य है –

पद-राग-जाग चहौं कौसिक ज्यों कियो हौं।

१८१/३

भगवान के चरणों का अनुराग यज्ञ कर रहे थे। इसका सरल-सा तात्पर्य है, भगवान के चरणों में अनुराग की आकांक्षा आप में जागृत होती है, उसमें कभी अभाव का अनुभव हो, असमर्थता का अनुभव हो। यदि आपको सामर्थ्य का अनुभव हो रहा हो, तो आप उस सामर्थ्य का सदुपयोग कीजिए और सामर्थ्य के द्वारा जो सफलताएँ पाई जा सकती है, उसे पा लीजिए। पर पा लेने के बाद भी यदि आप यह अनुभव करने लगें कि इतना पा लेने के बाद भी अभी कुछ पाना शेष है, जिसका अनुभव महाराज मनु को हुआ था, जिसे उन्होंने नैमिषारण्य में तपस्या और साधना के द्वारा श्रीराम को पुत्र के रूप में पाने का वरदान पाकर अपने उस अभाव की पूर्ति की। महर्षि विश्वामित्रजी ने क्या किया? उन्होंने अनुभव किया कि ताड़का को मैं नहीं मार सकता। ताड़का कौन है? यह एक आध्यात्मिक सूत्र है कि महान से महान व्यक्ति भी कभी-कभी ताड़का से प्रभावित हो जाता है। ताड़का कौन है? इसके लिए गोस्वामीजी शब्द देते हैं –

सहित दोष दुखदास दुरासा।

ताड़का दुराशा है। आशा और दुराशा, मनुष्य के जीवन की वह वृत्ति है, जो उसके दु:ख का व्यावहारिक कारण बनती है। हम जब दूसरे के द्वारा दुखी होते हैं, तो उसके मूल में क्या होता है? हम जब भी कोई कार्य करते हैं, तो यह आशा पाल लेते हैं कि यह व्यक्ति इसके बदले में मुझसे ऐसा व्यवहार करेगा। आशा की विचित्रता यह है कि व्यक्ति कम करके अधिक से अधिक पाना चाहता है और कठिनाई तब होती है जब समाज के दो व्यक्ति, वे कोई भी हों, पति-पत्नी या भाई-भाई, दोनों एक दूसरे से आशा रखते हों और प्रत्येक को यह लगता हो कि मैंने इसके लिए जितना किया है उसके बदले में इसने मेरी इच्छा पूरी

नहीं की, तो एक संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। तब यह आशा स्पष्ट ही दुख देती है। इसीलिए गोस्वामीजी ने दोहावली रामायण में कहा कि सबसे अनोखा देवता या देवी कहिए, उनका नाम आशा है –

तुलसी अद्‌भुत देवता आसा देवी नाव।

दोहावली/ २५८

अन्य देवी-देवता प्रसन्न होते हैं, तो क्या देते हैं? वे आपकी इच्छा पूरी करते हैं। आशा देवी क्या करती हैं? गोस्वामीजी ने कहा कि आशा देवी अगर कोई पूजा करे, तो वे शोक देंगी, आपको दुख दे देंगी। इसका अर्थ है कि आशापूर्ति नहीं हुई, तो आपको बुरा लग ही गया और आशा की पूर्ति हो गई तो आपकी आशा और बढ़ती जायेगी। फिर एक समस्या है न ! आपकी आशा पूरी होने के बाद भी आप रुक थोड़े ही जाएँगे? आपकी आशा और बढ़ेगी और वह बढ़ते-बढ़ते दुराशा बन जायेगी। दुराशा की ताड़का तब दूसरों को खाने लगती है। उसमें यह हिंसक वृत्ति, द्वेष की वृत्ति आने लगती है।

आप और हम दूसरों से आशा करते हैं। किन्तु आशा की पूर्ति के बाद आशा और अधिक बढ़ती है। वह आशा जब दुराशा के रूप में परिणत हो जाती है, तब हम दूसरों को नष्ट करने में संकोच का अनुभव नहीं करते हैं। मानो इस दुराशा को संसार के लोग तो दूर कर ही नहीं पाते। पर बड़े से बड़े महापुरुष कहे जानेवाले भी और विरागी भी इससे मुक्त नहीं होते। किस अर्थ में मुक्त नहीं होते? उसका सूत्र यह है कि संसार का कोई व्यक्ति चाहेगा कि उसे यह धन चाहिए, यह पद चाहिए, यह उपाधि चाहिए, यह चाहिए, वह चाहिए, लेकिन जिसको कुछ नहीं चाहिए, उसको कुछ चाहिए कि नहीं? गोस्वामीजी ने कहा कि वह एक चाह तो रहती है, वही है दुराशा। क्योंकि आप किसी की प्रशंसा करेंगे, तो उसकी विशेषता को देखकर ही करेंगे और आप जिन वस्तुओं में लिप्त हैं, उसका अभाव दूसरे में हो, तो आप उसकी सराहना करते हैं। आप धन में आसक्त हैं और कोई कहे कि हम धन नहीं लेंगे, तो आप कहेंगे कि अरे ये बड़े महान हैं। पर जिसने नहीं लिया, वह भी कुछ चाहेगा कि नहीं? उसके मन में एक गहरी आशा दुराशा के रूप में आ जाती है कि भई, कुछ नहीं चाहिए, तो इनके मुँह से कम से कम इतना तो निकले कि उनको कुछ नहीं चाहिए। यह कहलाने की इच्छा नहीं छूटती। यह एक ऐसा कटु सत्य है, जो बड़े से बड़े महापुरुषों के जीवन में दिखाई देता है और विश्वामित्र का जीवन तो इसका ज्वलन्त दृष्टान्त है।

विश्वामित्रजी ने अनुचित ढंग से कामधेनु को पाने का प्रयत्न किया, छीनने का प्रयत्न किया। तपस्या के द्वारा क्या इच्छा है? यही कि सभी लोग ब्रह्मर्षि के रूप में हमारा सम्मान करें। वशिष्ठ ब्रह्मर्षि हैं, तो मैं भी ब्रह्मर्षि कहलाऊँ। पर वही समस्या, ब्रह्मर्षि का पद स्वयं ब्रह्मा ने उन्हें दिया, ब्रह्मर्षि कहकर पुकारा। लेकिन एकान्त में विश्वमित्र को बैठे हुए देखकर शिष्य ने पूछा – महाराज, आप तो ब्रह्मर्षि के रूप में स्वीकार कर लिये गये, पर उतने प्रसन्न दिखाई नहीं देते। उन्होंने कहा – सब कहते हैं, तो क्या हुआ, वशिष्ठ तो नहीं कहते। अब यह बड़ा संकट है। आपकी सारी महानता को एक व्यक्ति संकट में डाल सकता है। सब कहते हैं, तो क्या हुआ, वशिष्ठ तो नहीं कहते।

मानो दुराशा ही वह ताड़का है, जिसको विश्वामित्र जीत नहीं पा रहे थे। इस दुराशा का नाश व्यक्ति करेगा ही नहीं। अहंता, ममता जल्दी छूटती नहीं। छूटने के बाद भी इनका प्रभाव रहता है। जैसे आप किसी मिट्टी के बर्तन में घी रखें और घी पूरा निकाल दें, तो भी एक समस्या आप देखेंगे कि कुछ दिनों तक जिस घड़े में घी रखा गया था, उसमें से घी पूरा निकल गया, पर उस घड़े के कण-कण में घी समाया हुआ है और कण-कण में जो घी समाया हुआ है, उसमें जब कोई वस्तु रखी जायेगी, तो उसमें घी की उपस्थिति का भान होगा। इस दुराशा पर विजय कोई व्यक्ति कर ले, तो उससे बढ़कर महानतम कोई नहीं है। यह कैसे मिटती है? कौन-सी साधना है? तब विश्वामित्र को लगा कि –

गाधितनय मन चिंता ब्यापी।

हरि बिनु मरिहिं न निसिचर पापी।। १/२०५/५

ईश्वर ही इस दुराशा का नाश कर सकते हैं। यह जब किसी महापुरुष के जीवन में आ जायेगा, जब कोई महापुरुष यह समझ लेगा कि ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि किसी न किसी रूप में आशा का छोटा-से-छोटा संस्कार जीवन में, व्यवहार में प्रतिफलित न हो। तब इसका निदान तो ईश्वर ही कर सकता है। **(क्रमशः)**

विवेकानन्द जयन्ती विशेष

मा त्वं ही तारा और स्वामी विवेकानन्द

डॉ. अन्वय मुखोपाध्याय

सहायक प्राध्यापक, मानविकी व सामाजिक विज्ञान विभाग, आई.आई.टी, खड़गपुर

रामकृष्ण संघ से जुड़े सभी लोग स्वामी विवेकानन्द जी के द्वारा माँ काली के अस्तित्व को स्वीकार करने की ऐतिहासिक घटना से अवगत हैं। जिस रात श्रीरामकृष्ण ने उन्हें दक्षिणेश्वर में काली मन्दिर के गर्भगृह में भेजा था और उन्होंने माँ भवतारिणी से भौतिक कल्याण की प्रार्थना के स्थान पर ज्ञान, विवेक और वैराग्य प्राप्त करने की प्रार्थना की थी।[१] अपने जीवन के उस महत्त्वपूर्ण क्षण में माँ के प्रति दैवीय समर्पण के बाद, उन्होंने भगवान श्रीरामकृष्ण से माँ काली का एक भजन सिखाने के लिए कहा था। भावावेश में स्वामीजी ने रातभर यह गीत गया।[२] यद्यपि इस घटना के विषय पर कई बार लिखा जा चुका है और विद्वानों के साथ-साथ साधकों ने भी एकमत से न केवल नरेन्द्र नाथ के आध्यात्मिक जीवन, अपितु समग्र रूप से रामकृष्ण-भावांदोलन के पथ में इस विशेष रात के अत्यधिक महत्त्व को स्वीकार किया है, किन्तु सम्भवत: ही कभी हमने श्रीरामकृष्ण के द्वारा सिखाये गये इस श्यामा संगीत में अन्तर्निहित दर्शन पर विशेष ध्यान दिया हो। श्रीरामकृष्ण-वचनामृत को गहराई से पढ़नेवाले पाठक भली-भाँति जानते हैं कि ठाकुरजी द्वारा गाए गए गीत केवल भजन मात्र ही नहीं, अपितु ये गीत शाक्त और वेदान्त दर्शन के साथ-साथ माँ की भक्ति-भावना से भी पूर्ण हैं। नरेन्द्रनाथ जैसे हठी शिष्य को श्रीरामकृष्ण द्वारा माँ काली की महिमा की शिक्षा देना, उसी रात अपने चरम स्तर तक पहुँच गया था। श्रीरामकृष्ण का मूल दर्शन ब्रह्म और ब्रह्म-शक्ति का एकत्व, उनके शिष्य नरेन्द्र द्वारा उसी रात सहजता से समझा और सराहा गया। ठाकुरजी भारत में आध्यात्मिक शिक्षा के इतिहास में एक अद्वितीय शिक्षक की भूमिका में थे। उन्होंने केवल शब्दों के माध्यम से ही

नहीं, बल्कि प्रेमपूर्ण स्पर्श, करुणामय दृष्टि और भावनात्मक रूप से आकर्षक गीतों के माध्यम से भी उपदेश दिया। संगीत की गूँज, ठाकुरजी के हृदय में उमड़ता प्रेम और इस गीत के शब्दों ने मिलकर ही सम्भवत: स्वामीजी की आत्मा में स्थायी रूप से माँ भवतारिणी का संदेश अंकित करने चमत्कार किया। स्वामीजी के आत्मा में स्थायी रूप से माँ भवतारिणी का सन्देश अंकित करने की कृपा कि वह हमेशा अपने भक्तों के साथ हैं, वे ही वास्तविक अलौकिक कर्मों की सूत्रधार हैं, प्रत्येक नश्वर प्राणी उनके साधन मात्र के रूप में काम कर रहा है। अतएव यह गीत स्वामीजी के भीतर ठाकुरजी द्वारा निर्देशित मातृ-तत्त्व के सार को समाहित करता है। इस विषय पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है और हमें स्वामीजी के परवर्ती प्रसंगों के सन्दर्भ में इस गीत के गहन दार्शनिक निहितार्थों को, विशेष रूप से स्वामीजी द्वारा पश्चिमी देशों में प्रदत्त "Talks on Divine Mother" व रामकृष्ण-विवेकानन्द भावान्दोलन के समग्र रूप में देखने-समझने की आवश्यकता है।

अज्ञात लेखक द्वारा रचित यह श्यामा-संगीत इस प्रकार है –

मा त्वं हि तारा, तुमि त्रिगुणधरा परात्परा।
आमि जानि गो ओ दीन दयामयी, तुमि दुर्गमेते दु:खहरा।।
तुमि जले, तुमि स्थले, तुमि आद्यमूले गो मा,
आछो सर्वघटे अक्षपुटे साकार-आकार निराकारा।।
तुम सन्ध्या, तुमि गायत्री, तुमि जगद्धात्री गो मा,
अकूलेर त्राणकर्त्री सदाशिवेर मनोहरा।।[३]

यह बहुत ही रोचक तथ्य है कि उस रात की महत्त्वपूर्ण

घटना का स्पष्ट कारण स्वामीजी द्वारा श्रीरामकृष्ण की इष्टदेवी माँ काली की दैवी सत्ता को स्वीकार करना था, किन्तु उपर्युक्त गीत में कहीं भी देवी को काली के रूप में सन्दर्भित नहीं किया गया है। वस्तुत: उक्त गाने से माँ काली का नाम पूरी तरह से लुप्त है। गीत का आरम्भ इन शब्दों से ही तो है, 'माँ त्वं ही तारा''/माँ, तुम ही तारा-तारिणी हो। इसका अर्थ है कि वे भव-चक्र से मुक्त करनेवाली, तारक मन्त्र का सार, प्रणव और परम मोक्ष की ओर ले जानेवाली एकमात्र मुक्तिदाता हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दक्षिणेश्वर में माँ काली का नाम भी भवतारिणी ही है, जो भव-संसार से तारनेवाली, मुक्ति प्रदात्री हैं। देवी तारा दश महाविद्या मंडल में दूसरी महाविद्या हैं और तांत्रिक ग्रंथों में इन्हें काली के साथ अभिन्न रूप में प्रस्तुत किया गया है – '**यथा काली तथा तारा तथा त्रिपुरसुन्दरी**'। महाकाल विरचित दक्षिणकालिका स्तव में चतुर्धा मूर्ति के एकत्व के विषय में कहा गया है –

यथा काली तथा तारा तथा छिन्ना च कुलुक्का।
एकमूर्तिश्चतुर्भेदा देवि त्वं कालिका परा।।

शक्तिसंगम तंत्र (४/५१)

इसमें भी कहा गया है कि काली, तारा, त्रिपुरसुन्दरी और छिन्नमस्ता, ये चारों स्वरूप एक हैं –

यथा काली तथा तारा तथैव सुन्दरी परा।
तथैव छिन्ना संदिष्टा चतुर्णां नहि भिन्नता।।

काली और तारा इस प्रकार अभिन्न हैं, जैसे हमारे दक्षिण व वाम स्कन्ध। इन दोनों विद्याओं की स्तुति एक ही मन्त्र और यशोगान से की जा सकती है, क्योंकि दोनों एक-दूसरे के पर्याय हैं तथा कोई विशेष अन्तर नहीं है। जैसाकि मुण्डमाला तन्त्र के षष्ठ पटल में आता है – ''**काली तारा समा विद्याचारे स्तुति-विचारणे।**'

बंगीय मातृ-संगीत में पार्वती, दुर्गा और काली सभी को प्राय: तारा के रूप में सन्दर्भित किया जाता है। बंगाल में शाक्त साधना का प्रसिद्ध केन्द्र तारापीठ (जहाँ महादेवी को माँ तारा के रूप में पूजा जाता है), वह स्थान रहा है, जहाँ बहुत से शाक्त भक्तों, कवियों और तान्त्रिक साधकों ने आध्यात्मिक दीक्षा प्राप्त की है। यहाँ यह भी रेखांकन योग्य है कि तारापीठ में देवी के विशेष सन्दर्भ के बिना भी देवी माँ को बंगाल में भक्तों व भक्त-कवियों द्वारा उनके सभी प्रमुख रूपों में तारा के रूप में विशेषत: सम्बोधित किया जाता है। जैसाकि हम जानते हैं कि श्रीदुर्गासप्तशती के प्रथम अध्याय में ब्रह्मा द्वारा महाकाली की स्तुति में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि देवी प्रणव (तारक मंत्र) के साथ एक हैं –

सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषत:।।(१.७४)

भले ही वह त्रिगुण-धरा है, अर्थात् उनमें तीनों गुण समाहित हैं, वे परात्पर भी हैं – अर्थात् पारलौकिक। हम दुर्गासप्तशती में नारायणी स्तुति में देखते हैं, वे गुणाश्रया और गुणमयी दोनों हैं। दूसरे शब्दों में, संसार और जो इस संसार से परे हैं, दोनों उनके सर्वव्यापी अस्तित्व के अंश हैं। वे संकटग्रस्तों को संकटों और दुखों से छुड़ाती हैं, वे हमारी दुर्गति दूर करती हैं, वे सर्वव्यापी करुणा का स्रोत हैं। वे सर्वत्र हैं, सर्वव्यापिनी हैं – वे जल में, थल में, भूमि में, संसार के मूल में हैं। वे हर प्राणी में हैं। वे केवल साकार दिव्य सत्ता मात्र ही नहीं, अपितु निराकार, पारलौकिक, निर्गुणा देवी भी हैं। देवीभागवत के अनुसार यह पराम्बा का स्वरूप है। वे साकार और निराकार, सगुण और निर्गुण दोनों हैं। गीता में कहा गया है कि वे सन्ध्या और गायत्री हैं, जो हिन्दुओं के मुख्य दैनिक अनुष्ठान हैं। इसलिए वे सभी नित्य कर्मों का सार हैं। क्योंकि ठाकुर ने अपने गृही और संन्यासी शिष्यों को कई बार बताया है कि वे जगद्धात्री हैं, ब्रह्माण्ड का आधार हैं। वे निराश्रितों की एकमात्र आश्रय हैं और गूढ़ रहस्यों से युक्त देवी हैं, जो विशुद्ध ज्ञान-स्वरूप भगवान सदाशिव के मन और मस्तिष्क को चुरा सकती हैं।

जब हम गीत की आलंकारिक संरचना को सूक्ष्मता से देखते हैं, तो हमें समझ में आता है कि यह देवी के भौतिक स्वरूपों पर उतना ध्यान केन्द्रित नहीं करता है, जितना उनके अमूर्त गुणों पर। माँ के रूप में देवी की सर्वव्यापी पहचान इस गीत का हृदय और आत्मा है। वास्तव में इस गीत के प्रत्येक छन्द में प्रतिबिम्बित करुणामयी जगत जननी का किसी भी धार्मिक दर्शन के साथ विरोधाभास नहीं है, जो परम तत्त्व को निराकार व निर्गुण सत्ता के रूप में देखता है। यहाँ शाक्त दर्शन और अद्वैत-वेदान्त दर्शन आपस में घनिष्ठता से जुड़े हुए हैं। इस गीत में जिस माँ को सम्बोधित किया गया है, वह अद्वैत-वेदान्त दर्शन के ब्रह्म से थोड़ा भी अलग नहीं हैं। ठाकुरजी स्वयं अपने प्रिय नरेन को मातृभक्ति के माध्यम से परम अद्वैत-तत्त्व की शिक्षा देते हैं।

माँ भगवती यहाँ अद्वैत-ज्ञान का प्रवेश द्वार तथा अद्वैत-ज्ञान के साथ एकाकार दोनों ही हैं। इस गीत में माँ की जिस सर्वव्यापी दिव्य चेतना की महिमा गायी गई है, वह आत्मा के साथ एक है, जिस पर वेदान्ती ध्यान करते हैं। माँ जो तारा हैं, मुक्तिदात्री हैं, वे वेदान्तियों को मोक्ष और सामान्य सांसारिक व्यक्तियों को भौतिक सुख प्रदान करती हैं। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस गीत के माध्यम से माँ का आवाहन, वेदान्तिक शब्दों में ईश्वर (या ईश्वरी) और ब्रह्म दोनों रूपों में है, न कि केवल माया-शक्ति, भले ही माया-शक्ति के रूप में उनकी स्थिति को संक्षेप में ''सदाशिव मनोहरा'' विशेषण के माध्यम से दर्शाया गया है।

जैसाकि हम जानते हैं, स्वामी विवेकानन्द प्रारम्भ में ब्रह्म समाज की ओर आकर्षित हुए थे, जहाँ से श्रीरामकृष्ण उन्हें शाक्ताद्वैत दर्शन के ढाँचे की ओर ले आये थे।[४] परवर्ती काल में स्वामीजी उन्नीसवीं सदी में वेदान्त के सबसे महान वैश्विक उपदेशक के रूप में प्रसिद्ध हुए, जो ब्रह्म की द्वैतरहित वास्तविकता पर ध्यान केन्द्रित किया। सम्भवत: ठाकुरजी ने जैसा समझा था, ब्रह्म के साथ एक होकर विश्वप्रसविनी के अमूर्त तत्त्व की ओर अधिक आकर्षित हो सकते थे, जैसाकि माँ काली के साकार रूप की तुलना में, उन्होंने माँ काली की छवि के आध्यात्मिक महत्त्व पर अधिक प्रकाश डाला है।[५] श्रीमान अमिया पी. सेन कहते हैं कि स्वामीजी ने काली को केवल एक 'व्यक्तिगत छवि' के बदले 'ब्रह्माण्डीय समग्रता' के रूप में देखा।[६] काली के प्रति रहस्यवादी आत्म-समर्पण के तुरन्त बाद ठाकुर द्वारा स्वामीजी को सिखाया गया गीत निराकार आयाम को स्थिर रखता है। माँ और उसकी अमूर्त व्यापकता और पारलौकिकता को परम-तत्त्व के रूप में उजागर करता है।

स्वामीजी की कविताओं में देवी काली का हमें भयंकरी करालिनी देवी के रूप में सन्दर्भ मिलता है, जिसे विनाश की शक्ति के सबसे यथार्थ आध्यात्मिक प्रतिनिधित्व के रूप में देखा जाता है, जिसे 'वीर' साधकों द्वारा स्वीकार और स्वागत किया जाना चाहिए। वस्तुत: माँ भवतारिणी पर अपनी दार्शनिक बातचीत में स्वामीजी प्राय: ऐसी भाषा का उपयोग करते हैं, जो किसी को उस गीत की स्मृति करा सकता है, जिसे उनके गुरु ने काली की पूर्ण आध्यात्मिक वास्तविकता को स्वीकार करने की ऐतिहासिक रात में सिखाया था। इस लघु निबन्ध को समाप्त करने से पहले मैं उनके द्वारा दिए गए दो संक्षिप्त भाषणों पर ध्यान केन्द्रित करूँगा, जिसमें वह 'मा त्वं ही तारा' गीत के समान शब्दों में माँ जगदम्बा की बात करते हैं। न्यूयॉर्क में दिए गए एक व्याख्यान में स्वामीजी कहते हैं ''सबसे अन्त में आएगा आत्म-समर्पण। तभी हम स्वयं को माँ को समर्पित करने में सक्षम होंगे। यदि दुख आये, तो स्वागत है, यदि सुख आये, तो उसका भी स्वागत है। फिर, जब हम इस प्रेम तक पहुँचेंगे, तो सभी टेढ़ी चीजें सीधी हो जाएँगी। सबके लिए समान दृष्टि हो जायेगी, चाहे वह एक ब्राह्मण हो, चाण्डाल हो अथवा एक कुत्ता ही क्यों न हो। जब तक हम ब्रह्माण्ड को समान दृष्टि से, निष्पक्ष, अटूट प्रेम से नहीं देखेंगे, तब तक हम बार-बार चूक रहे होंगे। तब यह सब कुछ लुप्त हो जाएगा और हम सभी में उसी अनन्त शाश्वत माँ को ही देखेंगे।''[७]

यहाँ पर स्वामीजी की शिक्षा अद्वैत-वेदान्तिक प्रकृति की है, जो सभी की एकता पर केन्द्रित है। इस अद्वैत दर्शन के शिक्षण और उस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रात में उनके गुरु द्वारा उन्हें सिखाए गए गीत में समाहित शिक्षण के बीच कोई मूलभूत अन्तर नहीं है। इस भाषण को देते समय, क्या उन्हें माँ भवतारिणी के साथ अपनी रहस्यपूर्ण शरणागति की वह रात और उसके बाद अपने गुरु द्वारा 'माँ त्वं ही तारा' गीत के माध्यम से शाक्ताद्वैत दिग्दर्शन की बात याद आयी?

'देववाणी' में हमें स्वामीजी द्वारा मंगलवार (२ जुलाई) को माँ भगवती पर दिया गया एक व्याख्यान मिलता है। वहाँ उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि ईश्वर की उसके भयंकर स्वरूप में पूजा करना भयप्रद और आध्यात्मिक रूप से प्रतिकूल है।[८] जबकि वह स्वीकार करते हैं कि शाक्त शक्ति की पूजा करते हैं, वे शक्ति की मातृसत्ता पर विशेष बल देते हैं।[९] वे दृढ़ता से कहते हैं – ''सर्वदयालु, सर्व-शक्तिशाली, सर्वव्यापी माँ जगदम्बा के ममत्व के गुण की वह ब्रह्माण्ड में ऊर्जा का कुल योग है। ब्रह्माण्ड में शक्ति की प्रत्येक अभिव्यक्ति 'माँ' हैं। वे जीवन हैं, वे बुद्धि हैं, वे प्रेम हैं। वे जगत में हैं, फिर भी उससे अलग हैं। वे सगुण हैं, व्यष्टि हैं, जिसे देखा और जाना जा सकता है (जैसाकि श्रीरामकृष्ण ने उन्हें देखा और जाना था तथा अपने प्रिय नरेन को भी दिखाने और स्पर्श करने की बात कही थी।) मातृत्व के विचार में स्थापित होकर हम कुछ भी कर सकते हैं। वे प्रार्थना का शीघ्र उत्तर देती हैं।''[१०]

ये पंक्तियों माँ की एक साथ अन्तर्निहित और पारलौकिक प्रकृति पर ध्यान केन्द्रित करती हैं, जिसे हम संक्षिप्त गीत 'माँ त्वं ही तारा' में भी स्पष्ट रूप से चित्रित देख पाते हैं। अपने भाषण में, स्वामीजी ममतामयी देवी माँ का उल्लेख करते हैं, जो 'प्रार्थना' का शीघ्र उत्तर देती हैं। गीत की दूसरी और अन्तिम पंक्तियों में, हमें माँ की करुणामयी, प्रार्थना-उत्तर देने वाली विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। जैसाकि गीत रेखांकित करता है, वे दीनदयामयी, दयालु और दुखहारिणी हैं। उसी व्याख्यान में स्वामीजी निम्नलिखित कथन भी करते हैं, जो गीत द्वारा व्यक्त दार्शनिक तत्त्वों के समान है –

''वे किसी भी क्षण किसी भी रूप में स्वयं को हमारे सामने प्रदर्शित कर सकती हैं। देवी माँ के रूप, नाम या बिना रूप के नाम हो सकते हैं। जब हम इन विभिन्न भावों में उनकी पूजा करते हैं, तो हम शुद्ध अस्तित्व की ओर बढ़ सकते हैं, जिसका न तो कोई रूप है और न ही नाम।[११]

जैसा कि गीत में कहा गया है, वे साकार और निराकार दोनों हैं, आकार के साथ और बिना रूप के भी। तारा के रूप में परम उद्धारकर्ता, माँ महामाया ब्रह्मविद्या हैं, जो ब्रह्म के साथ एक हैं। विशुद्ध रूप से पारलौकिक, ब्रह्म माँ का वह पहलू है, जिसमें रूप और नाम विलीन हो जाते हैं। गीत, 'मा त्वं ही तारा' के दार्शनिक संदेश और जगदम्बा पर स्वामीजी की 'देववाणी' में एक गहरी प्रतिध्वनि है।

स्वामी भजनानन्द सरस्वती कहते हैं, पश्चिम में स्वामीजी का कार्य 'माँ का कार्य' था और इससे उनकी धीरे-धीरे काली और उनके दर्शन में रुचि बढ़ी।[१२] स्वामी विवेकानन्द के माध्यम से दक्षिणेश्वर से पश्चिम तक माँ काली की यह महान दार्शनिक यात्रा, जो देवी माँ के ही साधन बन गए थे (और श्रीरामकृष्ण भी, जो जगदम्बा से स्वयं अभिन्न हैं)''[१३], जिसका प्रारम्भ माँ भवतारिणी के दिव्य दर्शन से हुआ। तत्पश्चात् ठाकुर ने अपने प्रिय नरेन को 'मा त्वं ही तारा' भजन का शिक्षण दिया। एक अज्ञात लेखक द्वारा रचित यह श्यामा संगीत श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द द्वारा दिए गए ऐतिहासिक महत्त्व को अक्षुण्ण रखता है। यद्यपि अब तक बहुत कम लोगों ने ठाकुर और स्वामीजी द्वारा शुभारम्भ किए गए वैश्विक आध्यात्मिक आन्दोलन में इसके व्यापक महत्त्व को रेखांकित किया है। बहुत कम लोग इस गीत को गाते या सुनते समय रामकृष्ण-विवेकानन्द भावान्दोलन में इस गीत के ऐतिहासिक और दार्शनिक महत्व पर विचार करते हैं। यह लघु गीत, जब एक नवीन प्रकाश में दोबारा देखा जाता है, तो इस तथ्य की पुष्टि होती है कि ठाकुर ने इस छोटे-से गीत के माध्यम से स्वामी विवेकानन्द को कुछ ऐसा सिखाया, जिसका ज्ञान उन्हें नहीं मिल पाता, यदि उन्होंने इसके बदले शक्तिवाद पर हजारों किताबें पढ़ी होतीं। विश्वजननी की मुस्कान के बाद अपने गुरु द्वारा गाए गए गीत को सुनने का अवसर मिलने से माँ भवतारिणी के गर्भगृह में उनका गहरा आन्तरिक परिवर्तन हुआ। ज्ञान, विवेक और वैराग्य से सम्पन्न नरेन्द्रनाथ उस रात्रि ही संन्यासी स्वामी विवेकानन्द बन चुके थे। उस उभरते संन्यासी को उसके गुरु ने देवी माँ के मन्त्र जैसे गीत का उपहार दिया था। एक ऐसा उपहार, जो केवल श्रीरामकृष्ण ही उस चक्रवाती संन्यासी (Cyclonic Monk) को प्रदान कर सकते थे, जिनकी अद्भुत क्षमता उन्हें भव-तारा, उद्धारकर्त्री, देवी भवतारिणी माँ जगदम्बा द्वारा स्पष्ट हुई थी। ○○○

सन्दर्भ सूची – **१.** सरस्वती, स्वामी भजनानन्द Vivekannada & the worship of Kali in the West , प्रबुद्ध भारत (जनवरी, २०१२) २२-२३, pp२६-२७ **२.** तदेव p.27 **३.** https://bengalibhahans.rkmm.org/s/bnbj/m/%EO **४.** Sen, Amiya P. Exploration in Modern Bengal c 1800-1900 : Rssays on Religion, History and Culture, Delhi : Primus, 2010, p. 93 Mukhopadhyay, Anway. Atheism and the Goddess : Cross-Cultural Approaches with a focus on South Asia, Cham : Palgrave Macmillan, 2023 pp.80-85 **५.** Sen, pp.96-97: Mukhopadhyay, Anway, Literary and Cultural Readings of Goddess Spirituallity: The Red Shadow of the Mother, Newcastle upon Tyne: Cambridge Scholars Publishing, 2017, p.22 **६.** Sen, p.97 **७.** Vivekananda, Swami Mother Worship (Fragmentary notes of a class talk by Swami Vivekananda in New York), http://www.vivekananda, net/Bytopic/Mother Worship. html **८.** Vivekananda, Swami. inspired talks, Chennai: Sri Ramakrishna Math, 2018, p.79 **९.** तदेव, p.78-79 **१०.** तदेव p.78-80 **११.** तदेव p.80 **१२.** सरस्वती, pp.27-32 **१३.** Mukhopadhyay, Anway,. The Authority of Female Speech in Indian Goddess Traditions: Devi and Womansplaining (Cham: Palagrave Macmillan, 2020), 104-105.

विवेकानन्द जयन्ती विशेष

विवेकानन्द के जन्म-दिवस मकर संक्रान्ति की वैज्ञानिकता का जन-जीवन में प्रभाव

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो ! मकर संक्रान्ति के पावन दिवस में ही युगनायक स्वामी विवेकानन्द जी का जन्म हुआ था। स्वामी विवेकानन्द जी का बचपन बहुत आनन्ददायक और प्रेरक है। आइये, उनके जन्मदिवस मकर संक्रान्ति के वैज्ञानिक महत्त्व पर प्रकाश डालते हैं। हम सभी लोग मकर संक्रान्ति पर्व को उल्लास के साथ मनाते हैं। इस उत्सव को भारत के प्रत्येक राज्यों में भिन्न-भिन्न नामों और विभिन्न ढंग से मनाया जाता है। इस त्यौहार को हमारे पड़ोसी देश नेपाल और बांग्लादेश में भी मनाया जाता है। इस दिन तिल के लड्डू, तिल के गजक, दही चिउड़ा, तिलकूट, नए चावल का खीर, नए चावल से बनी खिचड़ी, चावल से बना पीठा; कई प्रकार के पकवान अलग-अलग राज्यों में बनाये जाते हैं। बच्चो! क्या आप जानते हैं? इन सबके पीछे वैज्ञानिक तथ्य है, जिसका हमारे जीवन में प्रकृति पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। मकर-संक्रान्ति पर्व प्रतिवर्ष १४ या १५ जनवरी को मनाया जाता है। इस पर्व की एक खगोलीय घटना भी है। मकर का अर्थ है कांस्टेलेशन ऑफ कैप्रिकोर्न (मकर का ज्योतिपुंज), जिसे मकर राशि कहते हैं। खगोल विज्ञान में कैप्रिकोर्न और ज्योतिष शास्त्र के मकर राशि में थोड़ा अन्तर है। कांस्टेलेशन तारों से बननेवाले खास पेट्रन से माना जाता है, जिसे पहचाना जा सके। प्राचीन काल से संसार की हर सभ्यता में लोगों ने उनके आधार पर उन्हें नाम दिया है। खगोलीय कांस्टेलेशन और ज्योतिष की राशियाँ लगभग मिलती-जुलती हैं, लेकिन वे एक नहीं हैं। संक्रान्ति का अर्थ संक्रमण यानी ट्रांजिशन है। इस दिन सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है। यह विण्टर सोल्स्टिक के बाद आता है। यानि सर्दियों की सबसे लम्बी रात २२ दिसम्बर के बाद सूर्य के किसी भी राशि में प्रवेश करने का अर्थ यह नहीं है कि सूर्य घूम रहा है। यह पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाने की प्रक्रिया का भाग है। इसे परिभ्रमण कहते हैं और सूर्य को पृथ्वी का एक चक्कर लगाने में १ वर्ष का समय लगता है। इसका अर्थ है कि सूर्य किस तारा-समूह या किस राशि के सामने आ गया है। मकर संक्रान्ति के बाद से ही दिन लम्बे होने लगते हैं और रातें छोटी। १४-१५ जनवरी के बाद से सूर्यास्त का समय आगे बढ़ने लगता है। इसके बाद २१ मार्च को दिन और रात बराबर होता है। इसे इक्विनॉक्स (विषुव) कहते हैं। इसका अर्थ है सूर्य उत्तरी गोलार्द्ध के बीचों बीच है। सूर्यास्त का समय धीरे-धीरे बढ़ते जाता है, अर्थात् ठण्ड कम होगी और गर्मी बढ़ेंगी, क्योंकि सूर्य सीधे उत्तरी गोलार्द्ध में अधिक समय तक रहेगा। मकर सक्रान्ति को उत्तरायण इसलिए कहते हैं कि सूरज दक्षिणी गोलार्द्ध से उत्तरी गोलार्द्ध की ओर आने लगता है। यह प्रक्रिया समर सोल्स्टिक (ग्रीष्मकालीन अयनांत) के दिन पूरी होती है। २१ जून को सबसे लम्बा दिन होता है। मकर संक्रान्ति सूर्य का धनु राशि से मकर राशि में प्रवेश करने का संक्रमण काल है। वैसे हिन्दू कैलेण्डर चन्द्रमा पर आधारित है। इसलिए हिन्दू त्यौहार की अंग्रेजी तिथि बदलती रहती है। इस मौसम में प्रकृति ने हमें तिल खाने को दिया है, इसलिए खाते हैं। जब हम सर्दी में गरिष्ठ भोजन करते हैं, तो शरीर में भारीपन आ जाता है। हम थोड़े मोटे हो जाते हैं। सक्रान्ति के दिन से जब हम ३-४ दिन गुड़, मूँगफली और तिल से बने लड्डू खाते हैं, तो शरीर के अन्दर फमेंटेशन (किण्वन) होगा, धीरे-धीरे गर्मी की ओर बढ़ेंगे और ठंढ के समय हमने जो गरिष्ठ भोजन खाया था, वह तेल उसको पचाने का प्रयास करेगा और शरीर को स्वस्थ्य करेगा।

इसी समय नयी फसलें उगती हैं और इसी खुशी में नये

शेष भाग पृष्ठ ३० पर

विवेकानन्द जयन्ती विशेष

स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गाँधी

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

(ब्रह्मलीन स्वामी सत्यरूपानन्द जी रामकृष्ण मठ, प्रयागराज के अध्यक्ष और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव थे। विवेक-ज्योति के पाठकों हेतु प्रस्तुत है, उनके द्वारा विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में 'विवेकानन्द और गाँधी' पर आयोजित द्विदिवसीय गोष्ठी में प्रदत्त व्याख्यान का सारांश।)

स्वामी विवेकानन्द और गाँधी के विषय में विद्वान वक्ताओं चिरंजीवी निखिलेश्वरानन्द जी ने, डॉ. सच्चिदानन्द जोशी जी ने, चिरंजीवी कनक कुमार तिवारी जी ने और महामहिम राज्यपाल महोदय श्री शेखर दत्त जी ने बताया कि इन महापुरुषों द्वारा भारत के कल्याण के लिए क्या-क्या किया गया। मैंने बहुत जगह गाँधीजी और विवेकानन्दजी के बारे में पढ़ा है। मैं इन दोनों महापुरुषों के बारे में जब सोचता हूँ, तो एक बात इन दोनों महापुरुषों के जीवन में मुझे दीख पड़ती है। तुलना की दृष्टि से नहीं, किन्तु आधार की दृष्टि से। विभिन्न कारणों से इसकी चर्चा इस सभा में नहीं हुई। वह बात यह है कि ये दोनों महापुरुष अपने जीवन में संयम पर दृढ़ विश्वास करते थे। उसका अक्षरश: उन्होंने पालन किया। इस संसार में कोई भी महान कार्य करना हो, छोटा या बड़ा कार्य भी करना हो, तो उसकी पहली आवश्यकता है – आत्मसंयम।

महात्मा गाँधी होने के पहले मोहनदास करमचन्द गाँधी एक साधारण व्यक्ति थे। संसार में कई प्रकार के लोग थे, गृहस्थ थे। जब गाँधीजी इंग्लैंड जा रहे थे, उनकी माँ ने उनसे कुछ वचन ले लिए। माँ ने उनसे कहा – एक शर्त पर तुम इंग्लैंड जाओगे। वह वचन था कि तुम पवित्र जीवन व्यतीत करना, आत्मसंयम का विकास करना। आप गाँधीजी और विवेकानन्दजी के जीवन में देखें। विवेकानन्द जी संन्यासी थे। संन्यासी का परम धर्म है आत्मसंयम। स्वामी विवेकानन्द की महासमाधि के लगभग एक साल पहले की बात है। वे बेलूड़ मठ में बीमार थे। उनके एक गुरुभाई ने एक दिन उनसे कहा। अब आपकी दवा हम वैद्य जी से कराएँगे। डॉक्टर की बहुत हो चुकी है। स्वामीजी सहमत हुए कि ठीक है, कराओ। वैद्यराज आए। वैद्यराज ने परीक्षण किया। परीक्षण करके उन्होंने कहा कि मैं दवा दूँगा। पर स्वामीजी एक शर्त है। मेरी दवा जब तक आप लेते रहेंगे, तब तक आप पानी का एक घूँट भी नहीं पीयेंगे। स्वामीजी को बहुमूत्र का रोग था। उनके गुरुभाई उनको गुरु समान मानते थे। स्वामीजी ने वैद्यराज से कह दिया, ठीक है, आपकी दवा मैं जब से शुरु करूँगा पानी नहीं पीऊँगा। उसके बाद वैद्यराज निकल गए। वहाँ उनके गुरुभाई निरंजनानन्द थे। वे सगे भाई से भी अधिक स्वामीजी को प्रेम करते थे। उस समय वे ही स्वामीजी की सेवा में थे। वे बार-बार स्वामीजी को पानी पिलाते थे। हर पन्द्रह-बीस मिनट में स्वामीजी के लिए पानी ले जाते। उन्होंने स्वामीजी से कहा – तुमको पानी पिलाते-पिलाते मेरी कमर टूट गई और वैद्यराज को तुमने कह दिया है कि पानी नहीं पिओगे। स्वामीजी ने कहा – तुम मुझे क्या समझता है? तेरे वैद्यराज की दवा आने दो। जब मुझे वैद्यराज की दवा देना तो बताना। कुछ देर बाद निरंजनानन्दजी ने स्वामीजी से कहा कि वैद्यराज जी की दवा आ गई है। ये दवा तुम्हें खानी है, किन्तु पानी नहीं पीना है। स्वामीजी बिस्तर पर बैठ गए। उन्होंने अपने तन और मन से कहा, जब तक मेरा आदेश न हो, एक बूँद जल भी मेरे गले के भीतर न जाने पाए। अगले इक्कीस दिन तक स्वामीजी ने एक बूँद पानी नहीं पिया। दूसरा कोई होता, तो इस तरह के आदेश का पालन न करता। पर अपनी जिह्वा पर इतना उनका संयम था।

स्वामी विवेकानन्द जी के पिताजी बहुत कमाते थे और बहुत खर्च भी करते थे। उनके पिताजी की मृत्यु होने के पश्चात् उनके घर की स्थिति बड़ी खराब हो गई, बहुत दरिद्रता आ गयी। ऐसा परम दारिद्र्य आया कि उनके छोटे भाई-बहन, विधवा माता; सबको भूखे रहने को विवश रहना पड़ा। घर में खाने को अन्न का एक दाना भी नहीं था। ऐसे समय में स्वामीजी के पड़ोस में रहनेवाली एक धनी, सम्पन्न युवती ने कहा कि अगर आप मुझे स्वीकार कर लें, तो मेरी सारी धन-सम्पत्ति आपकी है। स्वामी विवेकानन्द ने उसको ठुकरा दिया। ऐसा उनका आत्मसंयम था।

गाँधीजी की पत्नी कस्तूरबा बीमार थीं। यह साउथ अफ्रीका की बात है। डॉ. ने कहा कि यदि आप नमक कम खाएँ, तो आपके रोग दूर होने में बड़ी सहायता मिलेगी। अब उस समय उनको ब्लड प्रेशर था या नहीं, इसे मैं नहीं जानता। तरह तरह की चीजें खाने की आदत हम लोगों की रहती है। उनकी भी थी। गांधीजी ने कहा, डॉक्टर ने कहा है नमक कम खाओ। तुम नमक जरा कम खाओ। दोनों पति-पत्नी थे। कस्तूरबा ने गाँधीजी से कहा, आपको बिना नमक का खाना पड़े, तो पता लगे। कैसे मैं बिना नमक का खा सकती हूँ ! कम नमक खाने की बात आप करते हो। गाँधीजी ने कहा। तुम्हें जो करना हो करो। आज हम बिना नमक का भोजन करेंगे। आज से एक वर्ष तक मैं नमक नहीं खाऊँगा। कस्तूरबा बहुत रोई, गिड़गिड़ाई, समझाई। पर गाँधीजी तो सत्य के प्रेमी थे। उन्होंने कह दिया, सो कह दिया। एक वर्ष तक वे नमक नहीं खाए। तो गाँधीजी के जीवन में भी आत्मसंयम था। इसी से इन दोनों महापुरुषों के जीवन में शक्ति आई। इस शक्ति के कारण ही उनके शब्दों का प्रभाव भारत के शिक्षित, अनपढ़, गँवार सब पर हुआ। क्रान्तिकारी जेलों में गए, वे अपना प्राण देने को तैयार हो गए। वह शक्ति आत्मसंयम की थी।

दूसरी बात दोनों महापुरुषों का ईश्वर पर विश्वास था, उनकी सेवा में विश्वास था। गाँधीजी ने स्वयं लिखा है। मैं ईश्वर पर विश्वास करता हूँ, पर मैंने ईश्वर के दर्शन नहीं किए हैं। विवेकानन्द ने भी कहा है, यदि ईश्वर है, जैसा मैंने पढ़ा, तो ईश्वर के दर्शन के लिये मैं सब कुछ करने के लिये तैयार हूँ। मैं अपना जीवन दाँव पर लगाऊँगा। यह ईश्वरीय संयोग की बात है कि वे श्रीरामकृष्ण परमहंस के सम्पर्क में आए।

विवेकानन्दजी के जीवन का यह पक्ष हम लोग कम जानते हैं। उसका विस्तृत वर्णन है भी नहीं। लेकिन उनके गुरुभाइयों ने ही आपस में पत्राचार की शैली विकसित की। लगभग छह वर्ष तक स्वामीजी अपने गुरु के मार्गदर्शन में कठिन तपस्या करते रहे। उनकी तपस्या, गुरु की कृपा और ईश्वर की कृपा से उनको आत्मसाक्षात्कार हुआ। महातीर्थ काशीपुर के उद्यान में किराए का एक मकान उस समय लिया गया था। वह अब रामकृष्ण मिशन का है। स्वामी विवेकानन्द अपने दूसरे गुरु भाइयों को लेकर गुरु की सेवा में लगे थे। बारी-बारी से सेवा करते थे। दस-पन्द्रह लोग थे। गुरु की सेवा और तपस्या, ये दो ही काम उस काशीपुर के उद्यान में होते थे। गुरु की सेवा से जब पाला बदला, तो बैठकर अग्नि तपस्या गुरु के आगे करने लगे। उनके जितने भी गुरुभाई थे, उनको नरेन्द्र कहते थे। रात में ध्यान करते थे। सुबह पाँच बजे उठकर स्नानादि के लिये जाते थे, फिर सेवा में लगे रहते थे। रात भर ध्यान में डूबे रहते थे। एकाहारी और अल्पहारी थे। ऐसी उनकी तपस्या थी। इससे स्वामी विवेकानन्द एक महान संन्यासी बने।

गाँधीजी के जीवन पर दृष्टि आप डालें, तो पायेंगे कि गाँधीजी ने भी इन्द्रिय-संयम करने के लिये, जीवन को संतुलित करने के लिए जिह्वा का संयम किया। जिह्वा के दो कार्य हैं – बोलना और भोजन। बोलने के लिए जिह्वा का प्रयोग करें। गाँधीजी ने दृढ़ता से जिह्वा का संयम किया। इतनी सारी सुविधाएँ होने पर भी उन्होंने निश्चित कर लिया कि मैं अमुक इतनी वस्तुएँ ही चौबीस घंटे में लूँगा। उसमें दवा भी शामिल थी। साउथ अफ्रीका से उन्होंने यह आरम्भ किया। कस्तूरबा ने बहुत समझाया, पर गाँधीजी ने कहा, मैंने जितना निश्चित किया है। उतना ही भोजन उतनी ही बार करूँगा। गाँधीजी में स्वाद पर विजय करने की जो क्षमता थी, वह हम-सबके जीवन में भी है, पर हमारी क्षमता प्रकट नहीं होती है। उन्होंने दृढ़ता से जिह्वा को, स्वाद को वश में कर लिया था। बोलने में भी उनका संयम था। गाँधीजी ने अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक इंद्रिय-संयम पर जोर दिया और उसमें वे सफल रहे। अस्सी वर्ष तक वे जीवित रहे। लेकिन उनको यह शक्ति सात्त्विकता से मिली थी। **(अगले अंक में समाप्त)**

विवेकानन्द जयन्ती विशेष

आधुनिक भारत को विवेकानन्द का योगदान

डॉ. महेश प्रसाद राय

सहा. आचार्य, ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

स्वामी विवेकानन्द का आविर्भाव किसी शून्य काल में नहीं हुआ था। उनका भी एक युग था। इस युग का एक इतिहास था। एक त्रासदी थी और इन सबका प्रभाव स्वामीजी पर भी पड़ा था। जब हम स्वामीजी के कार्यों और अवदान का लेखा-जोखा करते हैं, तब समय के सन्दर्भ को, इतिहास के इस उलट-फेर को हमें विस्मृत नहीं करना चाहिए। इसी इतिहास की उपज स्वामी विवेकानन्द थे। इतिहास के इन कारकों ने ही स्वामीजी के कृतियों को दिशा दी है। भारतीय नवजागरण में स्वामीजी को शीर्ष स्थान में इसलिए भी रखा जाता है, क्योंकि उन्होंने समाज को एक नई दिशा की ओर प्रेरित किया। स्वामीजी ने धर्म, ईश्वर, नीति, जाति, शिक्षा, नारी; इन सभी तथ्यों का परिमार्जन किया।

स्वामी विवेकानन्द का युग अव्यवस्था और अराजकता का युग था। एक ओर पाश्चात्य धर्म तथा संस्कृति नृशंसता के साथ अपने धर्म का प्रचार-प्रसार कर रही थी, वहीं दूसरी ओर भारतीय धर्म तथा संस्कृति अपने मूल स्वरूप 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को विस्मृत कर निश्रेष्ट स्वरूप में विद्यमान थी। ऐसे संक्रमण काल में स्वामीजी ने कहा – ''धर्म के संकीर्ण, सीमित और लड़ाकू विचारों का परित्याग करना चाहिए... भविष्य के धार्मिक आदर्शों में संसार में विद्यमान सब शुभ और महान का समावेश होना चाहिए और साथ ही उसमें भावी विकास की अपरिमित सम्भावना होनी चाहिए। अतीत में जो भी अच्छा था, उसे संरक्षित करना चाहिए और विद्यमान भंडार में भावी बातों को जोड़ने के लिए द्वार खुले रखने चाहिए। धर्म में सबको आत्मसात् करने की क्षमता चाहिए, उन्हें एक-दूसरे को तिरस्कार से नहीं देखना चाहिए। मैंने अपने जीवन में अनेक आध्यात्मिक पुरुषों, अनेक बुद्धिमान व्यक्तियों को देखा है, जो ईश्वर के प्रचलित अर्थों में उस पर विश्वास नहीं करते थे, कदाचित् वे ईश्वर को हमसे बेहतर समझते थे। ईश्वर का वैयक्तिक, निर्वैयक्तिक, असीम विचार, नैतिक नियम या आदर्श मानव, सभी धर्म की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं।''

स्वामीजी के उपदेशों ने भारतवासियों की खोई हुई आत्म-शक्ति का उत्थान किया। स्वामीजी को अपने देश तथा देशवासियों से बहुत अनुराग था, उन्होंने स्वयं कहा, ''हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी-देवताओं को हट जाने में कुछ भी हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इस एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है।'' स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय जन-जीवन में व्याप्त छुआ-छूत की भावना को भी नकार कर समानता एवं बंधुत्व की परिणति में मानव-कल्याण की भावना को दिशा दी। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने जूठी-चिलम कविता के माध्यम से इसका उल्लेख किया है –

चिलम छीनकर पी ली स्वामीजी ने आँखें मूद।
खड़ा देखता रहा ठगा-सा वह मेहतर बेचारा।
टपकी दृग से उमड़ मौन आनन्द जलधि की बूँद।
स्वामीजी ने और जोर से सुलफे में दय मारा।।

स्वामीजी ने अपने युग के किसी अन्य विचारकों की अपेक्षा भारतवर्ष को कहीं अधिक स्वाभिमान की शिक्षा दी। उनका कथन, ''साहस का सूर्य उदित हो चुका है, भारत का उत्थान अवश्य होगा। किसी में वह शक्ति नहीं कि अब वह भारत को रोक सके। भारत अब फिर से निद्रा में नहीं सोयेगा। यह भीमकार देश फिर से अपने पाँव पर खड़ा हो रहा है ''

इन विचारों के माध्यम से स्वामीजी ने देश का नव-

निर्माण किया। स्वामीजी ने समाज को कभी ऐसे धर्म की शिक्षा न दी, जिससे समाज में विघटन हो। उनका धर्म कभी भी शुष्क एवं निरीह न था। उन्होंने सदैव जीवन को सबल बनानेवाले विचारों की शिक्षा दी। उन्होंने कहा भी है, ''हमलोग उस सर्वशक्तिमान की सन्तानें हैं, दिव्य अनन्त अग्नि की चिनगारियाँ हैं। हम नगण्य कैसे हो सकते हैं। हम सर्वशक्तिमान हैं, सब कुछ करने को तैयार हैं और सब कुछ अवश्य करेंगे।'' इस प्रकार उनका सन्देश ऊर्जा एवं साहस से परिपूर्ण था। उनके निकट आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति में ऊर्जा का संचार स्वयं ही होने लगता था। स्वामीजी ने मनुष्य को उनके दिव्य स्वरूप का बोध कराया और वे चाहते थे कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर एक ऐसे धर्म तथा संस्कृति का विस्तार हो, जिसमें प्रत्येक मनुष्य निम्नलिखित कथनों से परिपूर्ण हो। –

बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहीं भय सोक न रोग।।

जब स्वामीजी का उदय हुआ था, तब उनके सामने कई प्रकार के उद्देश्य दिखाई पड़े। सबसे बड़ा काम धर्म की पुन: स्थापना का था। बुद्धिवादी मनुष्यों की धर्म पर से श्रद्धा केवल भारत में नहीं, प्रत्युत अन्यत्र देशों में भी हिलती जा रही थी। अतएव यह आवश्यक था कि धर्म की सही व्याख्या प्रस्तुत की जाए, उन्होंने धर्म को केवल पुरोहित वर्ग की वस्तु न मानकर उसकी व्यापकता से सभी को न केवल आह्लादित किया, वरन उन्होंने धर्म के नाम पर जो मोक्ष की धारणा थी, उसे भी आधुनिक रूप में परिमार्जित किया। उन्होंने कहा भी है कि, ''धर्म वह वस्तु है, जिससे पशु मनुष्य तक और मनुष्य परमात्मा तक उठ सकता है।'' इसके अतिरिक्त उन्होंने धर्म के अन्य रूढ़िवादी एवं भ्रान्त तर्कों का निवारण किया। स्वामीजी का मूल उद्देश्य था कि धर्म किसी जाति-विशेष अथवा वर्ण-विशेष के धारण करने की वस्तु नहीं है, वरन् वह तो प्रत्येक मनुष्य के लिए समान रूप से प्रेरणा का स्रोत है।

स्वामीजी ने पाश्चात्य धर्म तथा संस्कृति के अन्धानुकरण में लिप्त भारतीय समाज को भारत की उच्चतम संस्कृति का बोध कराया, जिसकी संसार में किसी अन्य से कोई तुलना नहीं है। उन्होंने स्वयं कहा, ''पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिन्दू धर्म के समान इतने उच्च स्वर से मानवता के गौरव का उपदेश देता है।'' वे इस बात से भली-भाँति परिचित थे कि भारतीय धर्म तथा संस्कृति ही एक मात्र ऐसी है, जिससे पृथ्वी पर मानवता को बचाया जा सकता है।

यूरोप और अमेरिका में बृहत् मात्रा में भोग उपलब्ध था। इसीलिए स्वामीजी ने वहाँ के निवासियों को संयम और त्याग की शिक्षा दी, जिससे उनके मस्तिष्क की उर्वरता बनी रही। वहीं दूसरी ओर भारत में भीषण गरीबी व नग्नता विद्यमान थी। यहाँ के लोग धनाभाव एवं आपसी वैमनस्य के कारण जीवन के उच्च आदर्शों से विमुक्त हो चुके थे। अत: भारतवासियों को उन्होंने जो उपदेश दिया, वह केवल धर्म के लिये नहीं था, प्रत्युत उन्होंने यहाँ के लोगों में क्रान्ति का आह्वान किया और कर्म की भावना से लोगों को तेजोदीप्त करने का प्रयत्न किया। शिकागो विश्व-धर्म-सम्मेलन में भी स्वामीजी ने ईसाइयों के समक्ष निर्भीक गर्जना की थी, ''तुम ईसाई लोग मूर्तिपूजकों की आत्मा के बचाव के लिए भारत में धर्म प्रचारक भेजने को बहुत आतुर दिखते हो, किन्तु इन मूर्तिपूजकों के शरीर की क्षुधा की ज्वाला से बचाने के लिये तुम क्या कर रहे हो? भयानक दुर्भिक्षों के समय लाखों भारतवासी निराहार मर रहे थे, किन्तु तुम ईसाइयों से कुछ भी नहीं बन पड़ा। भारत की भूमि पर तुम गिरजे बनवाते जा रहे हो, किन्तु तुम्हें यह ज्ञात नहीं है कि पूर्वी जगत् की आकुल आवश्यकता रोटी है, धर्म नहीं। धर्म एशिया वालों के पास अब भी बहुत है। वे दूसरों से धर्म का पाठ नहीं पढ़ना चाहते। जो जाति भूख से तड़प रही है, उसके आगे धर्म परोसना उसका अपमान है। जो जाति रोटी को तरस रही है, उसके हाथ में दर्शन और धर्म-ग्रन्थ रखना उसका उपहास करना है।''

स्वामीजी से पूर्व भारतवर्ष में अनेक समाज-सुधारक थे, किन्तु कुछ ने केवल मिशनरियों के माध्यम से तथा कुछ ने केवल पुरातन शिक्षा पद्धति के माध्यम से नवीन भारत का नव-निर्माण करने का प्रयत्न किया, किन्तु स्वामीजी ने प्राच्य व पाश्चात्य धर्म का समन्वय कर एक नये प्रकार का विचार सबके समक्ष रखा, जिससे प्रत्येक मनुष्य (युवा, वृद्ध, बालक, स्त्री, ब्राह्मण, संन्यासी, छूत, अछूत) के भीतर अपने कर्म का संचार हो सके।

स्वामीजी ने नारी-शिक्षा के बिना भारत के विकास को असम्भव माना है। उन्होंने कहा भी है, ''नारियों की पूजा करके सभी जातियाँ बड़ी बनी हैं। जिस देश, जिस जाति में नारियों की पूजा नहीं होती, वह देश, वह जाति न कभी

बड़ी बनी है, न बन सकेगी। महामाया की साक्षात् मूर्ति इन नारियों का उत्थान हुए बिना क्या तुम लोगों की उन्नति सम्भव है।'' स्वामीजी ने कभी भी ऐसे धर्म को मानने की स्वीकृति नहीं दी, जिसमें किसी विधवा के आँसू, किसी बालक की भूख हो। उन्होंने कहा है, ''मैं नहीं मानता, ऐसे धर्म को जो एक विधवा के आँसू न पोछ सके और एक बच्चे को रोटी न दे सके।'' स्वामीजी कभी भी किसी बात से भयभीत नहीं हुए, न ही किसी धर्म एवं संस्कृति के समक्ष घुटने टेके थे। चाहे किसी धर्म एवं संस्कृति की विरासत कितनी ही प्रबल क्यों न हो? जयपुर नरेश को मूर्ति-पूजा के सम्बन्ध में दी गई शिक्षा उनके इसी व्यक्तित्व का परिणाम है।

हिन्दुओं के धर्म के ऊपर आक्षेप लगाते हुए उन्होंने बड़े ही निर्भीक स्वर में कहा है, ''जब मैं दृष्टि उठाकर देखता हूँ, तो हिन्दुओं की सारी धार्मिकता रसोई घर में घुसी हुई दिखाई देती है।'' धर्म-साधना के लिए गुफा में नाक-कान दबाकर प्राणायाम करने की परम्परा की भारत में बड़ी महिमा थी। स्वामीजी ने इस परम्परा पर भी कटाक्ष किया। उनका हिन्दू धर्म के विषय में यह कथन, आधा मील की खाई तो हमसे पार नहीं की जाती, किन्तु हनुमान के समान हम समग्र सिन्धु को लाँघ जाना चाहते हैं। हर आदमी योगी बने, हर आदमी समाधि में चला जाये, यह असम्भव है। दिनभर कर्म संयुक्त विश्व के साथ मिलन और संघर्ष तथा संध्या समय बैठकर प्राणायाम क्या इतना सरल कार्य है? तुमने तीन बार नाक बजायी है, तीन बार नासिका से भीतर की वायु को बाहर किया है, तो क्या इतने से ही ऋषिगण आकाश से होकर तुम्हारे पास चले आयेंगे। क्या यह भी कोई मजाक है? ये सारी बेवकूफी की बातें हैं। जिस चीज की जरूरत है वह है चित्तशुद्धि और चित्तशुद्धि कैसे होगी, सबसे पहले पूजा विराट की होनी चाहिये, उन असंख्य मानवों की जो तुम्हारे चारों ओर फैले हुए हैं। संसार के जितने भी मनुष्य व जीव-जन्तु हैं, सभी परमात्मा हैं, सभी परब्रह्म के रूप हैं और इनमें भी सर्वप्रथम अपने देशवासियों की पूजा करनी चाहिए। आपस में ईर्ष्या-द्वेष रखने के बदले, आपस में झगड़ा और विवाद करने के बदले तुम परस्पर एक-दूसरे की अर्चना करो, एक-दूसरे से प्रेम रखो। हम जानते हैं कि किन कर्मों ने हमारा सर्वनाश किया, किन्तु फिर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं।''

इस प्रकार स्वामीजी के विचार हृदयस्पर्शी एवं तेजोदीप्त हुआ करते हैं। ऐसे ही कालजयी महापुरुषों के लिये अमरता की उद्घोषणा भर्तृहरि ने इस प्रकार की है – **नास्ति येषां यश:काये जरामरणजं भयम्।** अर्थात् जिसके यशस्वी शरीर को जरा और मृत्युजनित भय नहीं होता।

स्वामीजी ने भारत को उसके सांस्कृतिक गौरव का बोध कराया। वे अपने युग के ऐसे नेता थे, जिन्होंने कभी भी राजनीति को अपने मार्ग में न आने दिया। स्वामीजी ने भारतीय जन-जीवन की सभी समस्याओं का समाधान व्यापक रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने धर्म, राजनीति, कर्म, भोग, वासना, जाति, शिक्षा, नारी तथा जीवन के प्रत्येक पहलू के लिए जीवन्त विचार एवं धारणाएँ विकसित कीं। उनके द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त किसी भी समय-सापेक्ष में उतने ही उपयोगी सिद्ध होंगे, जितने उनके तत्कालीन समाज में हुए थे। ऐसे ही महापुरुषों के लिए मु. इकबाल ने लिखा है –

हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।।

❍❍❍

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान, सम्पादक – स्वामी विदेहात्मानन्द, अद्वैत आश्रम (प्रकाशन विभाग), ५ डिही एण्टाली रोड, कोलकाता। **२.** विवेकानन्द की जीवनी, मूल लेखक रोमा रोला, अनुवादक, डॉ. रघुराज गुप्त, अद्वैत आश्रम (प्रकाशन विभाग), ५ डिही एण्टाली रोड, कोलकाता। **३.** स्वामी विवेकानन्द (संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश), स्वामी अपूर्वानन्द रामकृष्ण मठ, नागपुर। **४.** व्यक्तित्व का विकास, स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण मठ नागपुर। **५.** प्राच्य और पाश्चात्य, स्वामी विवेकानन्द **६.** मेरी स्मृतियों में, विवेकानन्द, भगिनी क्रिस्टिन, अनुवादक स्वामी विदेहात्मानन्द, अद्वैत आश्रम (प्रकाशन विभाग), ५ डिही एण्टाली रोड, कोलकाता। **७.** रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर।

पृष्ठ २५ का शेष भाग

चावल के तरह-तरह के पकवान बनाये जाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से देखें, तो दही-चूड़ा एक पूर्ण और पोषक-तत्त्व पूर्ण आहार है। इसे बिना पकाये खाते हैं, इसलिए इसके पोषक तत्त्व नष्ट नहीं होते हैं। इसीलिए बिहार में मकर संक्रान्ति को दही-चूड़ा खाया जाता है। तो बच्चो, पौष मास में मनाया जाने वाला मकर संक्रान्ति एक खगोलीय घटना है, इसलिए हम सभी आज भी इसे बहुत उल्लास के साथ मनाते हैं। ❍❍❍

युवाओं के प्रेरणास्त्रोत स्वामी विवेकानन्द

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

हम इस तथ्य से भली-भाँति परिचित हैं कि भारत में देवी-देवताओं के शान्त, तेजोमय विग्रहों के देखने पर हम पाते हैं कि वे सभी पर करुणा और आनन्द की वर्षा कर रहे हैं। स्वामीजी भगवान् श्रीराम के प्रति बहुत श्रद्धा रखते थे। श्रीराम के बारे में कहा जाता है, **सर्वदा सुप्रसन्नम्,** सर्वदा प्रसन्नचित्त। उनमें हम कठिन परिस्थितियों के बावजूद शान्त और अविचल रहने की क्षमता पाते हैं। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि जिस दिन श्रीराम को राजा बनाया जाना था, उसी दिन उन्हें चौदह साल के लिए वनवास भेज दिया गया था। उन्होंने समभाव, शालीनता, शान्ति और प्रसन्नता के साथ बिना किसी नकारात्मक प्रतिक्रिया के इस आज्ञा को स्वीकार किया। कल्पना कीजिए कि ऐसे व्यक्ति को, मन की ऐसी उच्च अवस्था, सन्तुलन और असीम आन्तरिक शान्ति प्राप्त करने से पहले, किस गहन मानसिक प्रशिक्षण से गुजरना पड़ा होगा। स्वामीजी में निश्चित रूप से यह गुण था, क्योंकि उन्होंने पश्चिम में अत्यधिक संघर्षों का सामना शान्तिपूर्वक किया।

स्वामी विवेकानन्द ने अपना जीवन मानवता की सेवा के लिए समर्पित किया। १८९३ में स्वामीजी ने विश्व धर्म संसद में भाग लेने के लिए शिकागो की यात्रा की। लेकिन यात्रा के समय उन्हें निम्नलिखित चुनौतियों का सामना करना पड़ा :

१. अस्वीकृति : प्रारम्भ में आयोजकों ने अपरंपरागत पोशाक और परिचय पत्र न होने के कारण उन्हें अस्वीकार कर दिया था।

२. गरीबी : एक अपरिचित नगर में भोजन और आश्रय खोजने के लिए उनको संघर्ष करना पड़ा।

३. भेदभाव : उन्हें सभा में उपस्थित कुछ लोगों से नस्लवाद और पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा।

इन बाधाओं के बावजूद भी स्वामी विवेकानन्द दृढ़ रहें। उन्होंने घंटों ध्यान, चिन्तन किया और ११ सितम्बर, १८९३ के विश्व धर्म संसद के मंच पर उन्होंने अपना प्रतिष्ठित अभिभाषण दिया, जिसका प्रारम्भ इन प्रसिद्ध शब्दों से हुआ –

अमेरिका के बहनो और भाइयो...

उनका अभिभाषण इतना प्रभावशाली रहा कि लगभग ७००० श्रोताओं ने खड़े होकर उनके सम्मान में तालियों की गड़गड़ाहट से उनकी सराहना की और उन्हें एक प्रसिद्ध हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में मान्यता मिली।

युवाओं के लिए सीख -

१. साहस : प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद स्वामीजी ने चुनौतियों का साहसपूर्वक सामना किया।

२. दृढ़ता : उन्होंने कई बाधाओं को पार किया, अपने लक्ष्य से कभी पीछे नहीं हटे।

३. आत्मविश्वास : उन्हें अपनी क्षमताओं और विचारों पर विश्वास था, तब भी जब दूसरों को उन पर सन्देह था।

४. अनुकूलनशीलता : उन्होंने नई परिस्थितियों और चुनौतियों को अपनाया और उन्हें विकास के अवसर के रूप में प्रयोग किया।

युवाओं को प्रेरणा

– नए अनुभवों और सीखने के अवसरों को स्वीकार करने की भावना का विकास करें।

– दूसरों की सेवा करें और मानवता के लिए काम करें। धैर्य और संयम का अभ्यास करें।

– अपने जीवन को एक उद्देश्य के साथ जीने का प्रयास करें।

विवेकानन्द युवाओं के लिए एक प्रेरणा हैं, जो उनके जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाने और एक उज्ज्वन भविष्य बनाने में सहायता कर सकते हैं।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, 'हम जैसा सोचते हैं, वैसा ही बनते हैं' इसलिए आप जो सोचते हैं, उसका ध्यान रखें। यदि आप स्वयं को दुर्बल समझते हैं, तो आप दुर्बल हो जाएँगे; यदि आप स्वयं को शक्तिशाली समझते हैं, तो आप शक्तिशाली हो जाएँगे। यदि आप स्वयं को अपवित्र समझते हैं, तो आप अपवित्र हो जाएँगे; यदि आप स्वयं को पवित्र समझते हैं, तो आप पवित्र हो जाएँगे। अत: यह सबसे महत्त्वपूर्ण है कि मस्तिष्क को उच्च विचारों, उच्चतम

आदर्शों से भर लें, उन्हें दिन-रात अपने सामने रखें और उससे महान् कार्य सम्पन्न होंगे।'

दूसरों में दोष खोजने की आदत छोड़ें

बेलगाम के हरिपद मित्र ने एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि किस प्रकार स्वामीजी के परामर्श ने उनके सोचने के ढंग को बदलकर, कार्यालय में अपने वरिष्ठ अधिकारियों के साथ उनके सम्बन्धों में सुधार करने में सहायता की। वे लिखते हैं कि एक समय था, जब वे कार्यालय में अपने वरिष्ठ अधिकारियों के साथ ठीक से मिलजुलकर कार्य नहीं कर पा रहे थे। उनकी किसी भी छोटी-सी टिप्पणी से मैं अपना संतुलन खो देता था। हालाँकि उनके पास एक अच्छी नौकरी थी, लेकिन वे प्रसन्न नहीं थे। जब उन्होंने स्वामीजी को अपनी समस्या के बारे में बताया, तो स्वामीजी ने कहा, 'आप नौकरी क्यों कर रहे हैं?' क्या वेतन के लिए नौकरी नहीं कर रहे हैं?' आपको हर महीने नियमित रूप से वेतन मिल रहा है; तो आप परेशान क्यों हो रहे हैं? कोई भी आपको बन्धन में नहीं डाल सकता है और आप जब चाहें त्याग-पत्र देने के लिए स्वतंत्र हैं। आप यह सोचकर अपने दुखों को क्यों बढ़ा रहे हैं, 'ओह मैं किस बंधन में फँस गया हूँ!' एक और बात, क्या आप मुझे बताएँगे कि जिस काम के लिए आपको वेतन मिलता है, उस कार्य के अलावा, क्या आपने कभी अपने वरिष्ठ अफसरों को प्रसन्न करने के लिए कुछ किया है? आपने ऐसा कभी नहीं किया, फिर भी आप उनसे खिन्न हैं, क्योंकि वे आपसे सन्तुष्ट नहीं। क्या यह बुद्धिमानी है? यह निश्चित रूप से जान लें कि दूसरों के बारे में हमारे मन में जो विचार आते हैं, वे हमारे आचरण के माध्यम से व्यक्त होते हैं; और भले ही हम इन विचारों को शब्दों में व्यक्त न भी करें, तो भी लोग उसी के अनुसार प्रतिक्रिया करते हैं। हम बाहरी दुनिया में वही देखते हैं, जो हम अपने मन में रखते हैं। यह कहावत कितनी सच है, **'आप भला तो जग भला।'** आज से दूसरों में दोष खोजने की आदत छोड़ने की कोशिश करें और आप पाएँगे कि जितना आप इसमें सफल होंगे, दूसरों के दृष्टिकोण और प्रतिक्रियाएँ भी उसी के अनुसार बदल जाएँगी।' उस दिन से हरिपद मित्र के जीवन में एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ, क्योंकि उन्होंने दूसरों में दोष खोजने की आदत को त्याग करने का भरसक प्रयास किया।

स्वामीजी के अच्छे सुगठित शरीर और प्रफुल्लित चेहरे को देखकर भारतीय भी भ्रमित हो गए थे। हरिपद मित्र कहते हैं, 'मुझे लगता था कि साधु-सन्त कभी भी मोटे और सन्तुष्ट नहीं हो सकते।' एक दिन जब मैंने इस पर अपनी बात कही, तो स्वामीजी ने मुस्कराते हुए और कटाक्ष करते हुए मजाकिया लहजे में जवाब दिया, 'यह मेरा अकाल बीमा कोष है। भले ही मुझे कई दिनों तक खाना न मिले, लेकिन मेरी वसा (चर्बी) मुझे जीवित रखेगी, जबकि यदि आपको एक दिन भी खाना न मिले, तो आपकी दृष्टि धुंधली हो जाएगी। जो धर्म मनुष्य को शान्ति नहीं दे सकता, उसे अपच की बीमारी की तरह त्याग देना चाहिए।'

संन्यासियों के बारे में पश्चिमी लोगों की आम अवधारणा थी कि वे गम्भीर आचरण वाले, लंबा चेहरा और पतला दिखने वाले होते हैं। परन्तु स्वामीजी की उपस्थिति ने इन पूर्व-अवधारणाओं को बदलकर इस तथ्य पर जोर देते हुए कहा, 'आध्यात्मिक लोग कट्टर या गंभीर नहीं होते, वे लंबे चेहरे वाले और पतले नहीं होते, वे मेरी तरह मोटे होते हैं।'

स्वामीजी की तेजोमयी, गरिमामयी उपस्थिति युवाओं के सभी विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाती है। सोचने का दृष्टिकोण बहुत व्यापक हो जाता है, जीवन के संकीर्ण मूल्य बदल जाते हैं। उनके विचार युवाओं के लिए एक नई शिक्षा है। युवा उनसे स्पष्ट और निर्भीक होकर सोचना सीख सकते हैं, जिससे न केवल उनकी अवधारणा स्पष्ट होगी, बल्कि वे उस अवधारणा से परे भी जा सकते हैं। स्वामीजी का जीवन शक्ति, आनन्द, तेज, उत्साह जैसी सभी सुन्दर और सकारात्मक चीजें को युवाओं में संचारित करता है, कभी भी जड़ता, आलस या दुर्बलता नहीं लाता। स्वामीजी के संग का सकारात्मक प्रभाव कोई वेदान्त और गम्भीर विचार नहीं है। कभी-कभी उनकी शिक्षाओं में ऐसा मनोरंजन, ऐसा उल्लास होता है, जिसका कोई और सानी नहीं मिलता। स्वामीजी गरजते हुए कहते हैं, 'पीछे हटने और असफल होने की परवाह न करें। 'गाय कभी झूठ नहीं बोलती, लेकिन फिर भी वह गाय ही रहती है, कभी मनुष्य नहीं। इसलिए इन असफलताओं की परवाह न करें; आदर्श को हजार बार पकड़े रहो और यदि आप हजार बार असफल होते हैं, तो एक बार फिर प्रयास करें।'

स्वामीजी निश्चित रूप से युवाओं के लिए एक प्रेरणादायी विरासत छोड़कर गये हैं, जो युवाओं को महान बनने और समाज पर सकारात्मक प्रभाव डालने के लिए प्रेरित करती रहती है। ○○○

प्रश्नोपनिषद् (५५)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

स ईक्षांचक्रे। कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति।।६/३।।

पदच्छेद – स: ईक्षांचक्रे – कस्मिन् उत्क्रान्ते अहम् अपि उत्क्रान्त: भविष्यामि। कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामि इति ।।

अन्वयार्थ: – स: (उस पुरुष ने) ईक्षांचक्रे (ईक्षण अर्थात् विचार किया), कस्मिन् (किसके) (देह से) उत्क्रान्ते (निकल जाने पर), अहम् (मैं) उत्क्रान्त: (शरीर के बाहर) भविष्यामि (हो जाऊँगा), कस्मिन् वा (और किसके) प्रतिष्ठिते (स्थित रहने पर) प्रतिष्ठास्यामि (स्थित हो जाऊँगा) – इति (ऐसा सोचा)।।३।।

भावार्थ – उस पुरुष ने विचार किया – किसके (देह से) निकल जाने पर, मैं शरीर के बाहर हो जाऊँगा और किसके स्थित रहने पर स्थित हो जाऊँगा – ऐसा सोचा।।३।।

भाष्य – स पुरुष: षोडशकल: पृष्ट: य: भारद्वाजेन ईक्षांचक्रे ईक्षणं दर्शनं चक्रे कृतवान् इत्यर्थ: सृष्टि-फल-क्रमादि-विषयम्।

भाष्यार्थ – भारद्वाज के द्वारा पूछा गया कि जो सोलह कलाओं वाला पुरुष है, उसने प्राण आदि के सृष्टि-रूपी फल के (श्रद्धा आदि) क्रम का ईक्षण अर्थात् दर्शन (विचार) किया।

भाष्य – कथम्? इति उच्यते कस्मिन् कर्तृ-विशेषे देहात् उत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि अहम् एवं कस्मिन्वा शरीरे प्रतिष्ठिते अहं प्रतिष्ठास्यामि प्रतिष्ठित: स्याम् इत्यर्थ:।

भाष्यार्थ – कैसे विचार किया? यह बताते हैं – किस कर्ता-विशेष के शरीर से उठने पर, मैं भी उठ सकूँगा और किसके स्थित रहने पर मैं (भी) स्थित हो जाऊँगा!

शंका – ननु आत्मा अकर्ता प्रधानं कर्तृ, अत: पुरुषार्थं प्रयोजनम् उररीकृत्य प्रधानं प्रवर्तते महद्-आदि-आकारेण।

भाष्यार्थ – परन्तु आत्मा तो अकर्ता और प्रधान (प्रकृति) ही कर्ता है, अत: पुरुष के लिए प्रयोजन को स्वीकार करके 'महत्' आदि रूप से 'प्रधान' ही (विचार में) प्रवृत्त होता है।

भाष्य – तत्र इदम् अनुपपन्नं पुरुषस्य स्वातन्त्र्येण ईक्षापूर्वकं कर्तृत्व-वचनम्; सत्त्व-आदि-गुणसाम्ये प्रधाने प्रमाण-उपपन्ने सृष्टि-कर्तरि सति ईश्वर-इच्छा-अनुवर्तिषु वा परमाणुषु सत्सु आत्मन: अपि एकत्वेन कर्तृत्वे साधन-अभावात् आत्मन: आत्मनि अनर्थ-कर्तृत्व-अनुपपत्ते: च।

भाष्यार्थ – ऐसी स्थिति में भी यह बात युक्तिसंगत नहीं है कि पुरुष ने स्वतंत्र रूप से इच्छा करके सृष्टि की। (किस कारण?) सत्त्व आदि गुणों की साम्य-अवस्था वाले प्रधान के प्रमाणत: सिद्ध होने पर, सृष्टिकर्ता के होने पर; (नैयायिकों के मतानुसार) ईश्वर की इच्छा का अनुसरण करनेवाले परमाणुओं के होने पर; और आत्मा के एकत्व तथा कर्तृत्व में किसी साधन का अभाव होने से अपने आप में अनर्थ करना, युक्तिसंगत नहीं लगता।

भाष्य – न हि चेतनावान् बुद्धिपूर्वकारी आत्मन: अनर्थं कुर्यात्।

भाष्यार्थ – क्योंकि कोई चेतनावान और बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाला व्यक्ति अपने लिये अनर्थ नहीं खड़ा करेगा।

भाष्य – तस्मात् पुरुषार्थेन प्रयोजनेन ईक्षापूर्वकम् इव नियत-क्रमेण प्रवर्तमाने अचेतने प्रधाने चेतनवत्-उपचारो-अयं 'स ईक्षाचक्रे' इत्यादि:।

भाष्यार्थ – अत: (ऐसा मान लीजिये कि) पुरुष के लिये जो प्रयोजन है, उसके लिये प्रधान (प्रकृति) के अचेतन होने से, उसी ने चेतन की भाँति – 'उसने विचार किया' आदि प्रयोग औपचारिक (गौण) है। **(क्रमश:)**

स्वामी विवेकानन्द का संस्कृत-विद्या में पाण्डित्य

डॉ. राजेश सरकार, शान्तनु पाण्डेय

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, कला संकाय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

विवेकानन्द जयन्ती विशेष

राष्ट्रप्रेम, अध्यात्म साधना, जनसेवापरायणता के मूर्तिमान विग्रह आधुनिक भारत के विश्वविख्यात युवा-संन्यासी, युवा-हृदय-सम्राट स्वामी विवेकानन्द के नाम से भला कौन परिचित नहीं है। विश्वधर्म के रूप में सनातन हिन्दू धर्म को प्रतिष्ठित करने, आत्मविस्मृत भारतीयों के समक्ष सनातन धर्म के ऐश्वर्य माहात्म्य को प्रकट करने से स्वामी विवेकानन्द का अवदान अविस्मरणीय है। स्वामीजी का जन्म १२ जनवरी, १८६३ ई. में उत्तरी बंगाल के प्रतिष्ठित कायस्थ कुल में हुआ था। आपके पिता श्री विश्वनाथ दत्त कलकत्ता उच्च न्यायालय के प्रतिष्ठित अधिवक्ता एवं माता श्रीमती भुवनेश्वरी देवी एक आदर्शमयी धर्मपरायणा गृहिणी थीं। स्वामीजी के बाल संस्कार अत्यन्त सुदृढ़ रहे। माता इन्हें रामायण, महाभारत एवं अन्य पौराणिक ग्रन्थों की कथायें सुनाया करती थीं, जिससे आपके मन:पटल में हिन्दू धर्मीय देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुयी। बाल्यावस्था में आप भगवान शिव की प्रतिमा के समक्ष बैठकर ध्यान किया करते थे।

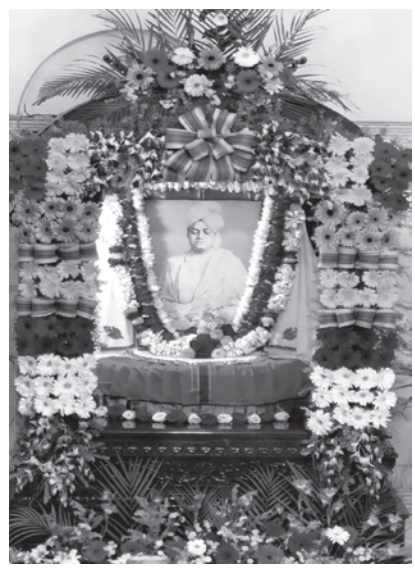

शिक्षा-दीक्षा – स्वामी विवेकानन्द की प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय प्राथमिक विद्यालय में हुयी। बाल्यकाल में ही उनमें नायकत्व, धैर्य, आत्मविश्वास के गुण प्रकट हो गये। सात वर्ष की आयु में इनका प्रवेश उच्च प्राथमिक विद्यालय में हुआ। अल्पवय में ही आप असाधारण बुद्धिमत्ता, असीम उत्साह, अनेक विध साहित्याध्ययन में रुचि, अंग्रेजी भाषा पर प्रभुत्व से सम्पन्न हो गये। न केवल पुस्तकीय विद्या प्रत्युत शारीरिक व्यायाम, खेलकूद, नौका संचालन, मल्लयुद्ध, खड्ग युद्ध, फुटबाल आदि में भी आपकी गहरी रुचि एवं दक्षता थी।

१८७९ ई. में स्वामी विवेकानन्द ने मैट्रिकुलेशन स्कूल से अन्तिम परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। आरम्भ में वे कलकत्ता के प्रसिद्ध प्रेसिडेंसी कॉलेज (वर्तमान में विश्वविद्यालय) में प्रविष्ट हुए, किन्तु उन्होंने जनरल असेम्बली इंस्टीट्यूशन नामक संस्था में अध्ययन किया। इस संस्था के संस्थापक रेव अलेक्जेण्डर डफ थे। समयान्तर पर यह संस्था स्काटिश चर्च कॉलेज नाम से जानी जाने लगी। इन्होंने अपने अध्ययन काल में पाश्चात्य तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र, विज्ञान, इतिहास, नृतत्त्वशास्त्र, भूगोल आदि विषयों का गम्भीर अनुशीलन किया। इसके साथ ही इन्होंने प्राच्यदेशों के तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र, संस्कृति, सभ्यता एवं इतिहास का भी अध्ययन किया।

महाविद्यालय के प्राचार्य एवं अंग्रेजी के प्राध्यापक डब्लू हेस्टी महोदय का किशोर नरेन्द्र के विषय में अभिव्यक्त विचार ध्यातव्य है – ''नरेन्द्र वास्तविक विद्वान है। मैंने सुविस्तृत एवं सुदीर्घ विश्व का भ्रमण किया, किन्तु जर्मन विश्वविद्यालयों के दर्शनशास्त्र के छात्रों में भी वह प्रतिभा नहीं देखी, जो इस युवक में है। यह युवक जीवन में अतुलनीय कार्य करेगा।'' हेस्टी महोदय से ही नरेन्द्र को अपने भावी गुरु रामकृष्ण परमहंस के विषय में सूचना प्राप्त हुयी। रामकृष्ण परमहंस के विषय में स्वामी विवेकानन्द ने अपने शिक्षक से पूर्व में ही सुन रखा था। उनसे मिलने का सौभाग्य इन्हें अपने सहपाठी

एवं श्रीरामकृष्ण परमहंस के निकटतम शिष्य रामचन्द्र दत्त के सहयोग से प्राप्त हुआ। किशोरवय में संशयवादी रहे, किन्तु श्रीरामकृष्ण परमहंस के सान्निध्य ने इन्हें आध्यात्मिक जगत् में आकाशचुम्बिनी कीर्ति प्रदान की। इन्हें नरेन्द्रनाथ से स्वामी विवेकानन्द के रूप में प्रख्यात कर दिया।

स्वामी विवेकानन्द की संस्कृत शिक्षा एवं संस्कृत के प्रति अनुराग

अत्यल्पकाल तक जीवित रहे युगपुरुष एवं आधुनिक भारत के सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता स्वामी विवेकानन्द ने संस्कृत शास्त्रों में परम प्रवीणता अर्जित की थी। आपके द्वारा अनूदित ग्रन्थ, वेदों से आरम्भ करके धर्मशास्त्र आदि का आश्रय लेकर शास्त्रार्थ एवं व्याख्यान की प्रवृत्ति आपकी संस्कृत विद्या के प्रति अपरिमित रुचि को प्रकट करती है। आप अपने व्याख्यानों में प्राय: संस्कृत ग्रन्थों की पंक्तियाँ ही उद्धृत करते थे।

शिकागो में ११ सितम्बर, १८९७ को आयोजित विश्वधर्म सम्मेलन में हिन्दू धर्म की सहिष्णुता सह-अस्तित्त्व की भावना तथा सर्वधर्म सम्भाव की नीति को अभिव्यक्त करने के लिए पुष्पदन्ताचार्य विरचित शिवमहिम्न स्तोत्र के पद्य को कुछ इन शब्दों में अभिव्यक्त किया था – जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो ! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जानेवाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।''

त्रयी साङ्ख्यं योग: पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमद: पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।[१]

स्वामीजी जीवनपर्यन्त संस्कृत के प्रति अपनी रुचि एवं श्रद्धा अभिव्यक्त करते रहे। बाल्यकाल से ही आपको घर में रामायण–महाभारत कथा, हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं के प्रसंग, पुराणकथा, भारतीय संस्कृति-सभ्यता की परिचर्चा, यह ज्ञान-सम्पदा आपको विरासत के रूप में प्राप्त हुयी। संस्कृत-भाषा में रचित शास्त्र वाक्यों को आपने अँग्रेजी भाषा के माध्यम से पाश्चात्य जनमानस को अधिगत कराया। उनका विश्वास था कि संस्कृत भाषा ही भारतीय शास्त्र-परम्परा की संवाहिका है एवं इस विषय में किसी भी प्रकार विप्रतिपत्ति नहीं है। संस्कृत चिन्तन उनकी अन्तरात्मा में सन्निहित था। इस सन्दर्भ में वे लिखते हैं – ''यह (वेद) अन्धविश्वासों को समाप्त कर देगा। आपको आध्यात्मिकता और संस्कृत सीखने की उपेक्षा करने के लिए किसने कहा? ...संस्कृत शब्दों की ध्वनि राष्ट्र को प्रतिष्ठा, सामर्थ्य और शक्ति देती है। भारत में संस्कृत और प्रतिष्ठा साथ-साथ चलती है। जैसे ही वह आपके पास होगी, कोई भी आपके विरूद्ध कुछ कहने का साहस नहीं करेगा। यह एक रहस्य है, इसे स्वीकार करें। एकमात्र सत्य जो मैं निचली जातियों को बताना चाहता हूँ कि आपकी दशा को ठीक करने का एकमात्र उपाय संस्कृत का अध्ययन करना है। राष्ट्र के सभी जातियों की संस्कृत की शिक्षा पर आप लाखों का खर्च क्यों नहीं कर रहे हैं? यह प्रश्न है। जिस क्षण आप यह सब करते हैं, आप ब्राह्मणों के बराबर हैं।''[२]

स्वामीपाद का यह मानना था कि संस्कृत केवल विचार-संवाहिका भाषा ही नहीं, प्रत्युत समग्र विद्या है, जिसके अन्तर्गत वेद, वेदांग, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, नाट्यशास्त्र, गजशास्त्र, अश्वशास्त्र, पाककलाशास्त्र, शिल्पशास्त्र, वास्तुशास्त्र, आयुर्वेद, गणित, खगोल सदृश विषय सर्वप्रथम संस्कृत में ही प्रकाशित हुए। न केवल हमारे आध्यात्मिक एवं धार्मिक; अपितु वैज्ञानिक एवं चिकित्सापरक लोकोपयोगी शास्त्र संस्कृत भाषा में ही सन्निहित हैं। इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द का अधोलिखित विचार ध्यातव्य है – ''इसका धर्म, इसका दर्शन, इसका इतिहास, इसकी नैतिकता, इसकी राजनीति सभी काव्यात्मक कल्पना के फूलों के बिस्तर में जुड़े हुए हैं। भाषा का चमत्कार जिसे संस्कृत या परिष्कृत कहा गया, जो किसी अन्य भाषा की तुलना में उन्हें बेहतर ढंग से व्यक्त करने या परिवर्तन करने में सक्षम है। यहाँ तक कि गणित के कठिन तथ्य को व्यक्त करने के लिये भी संगीतमय संख्याओं की सहायता ली गयी।''[३]

महावीर, तथागत बुद्ध, कबीर, रैदास आदि सन्तों-महात्माओं ने वेद-उपनिषद आदि शास्त्रों में निहित तत्त्वों का उपदेश तथाकथित निम्न जातियों में करके उनके उत्थान का प्रयास किया। किन्तु स्वामीजी का विचार था कि इतना ही पर्याप्त नहीं है। न केवल एक विशिष्ट वर्ग में अपितु जनसामान्य में भी संस्कृत विद्या का प्रचार होना चाहिए, तभी

भव्य भारतीय संस्कृति का निर्माण हो सकता है। स्वामीजी कहते हैं – ''वह महान था : उसने विचारों को शीघ्रता से प्रसारित किया और उन्हें दूर तक पहुँचाया। लेकिन उसके साथ ही संस्कृत का प्रसार होना चाहिए था। ज्ञान तो था, किन्तु वहाँ प्रतिष्ठा नहीं थी, वहाँ, संस्कृत नहीं था। यह संस्कृत साधारण ज्ञान का भण्डार नहीं है, बल्कि यह भयंकर आघातों में डटकर खड़ा रहता है।''[४]

भारत के प्राय: समाजसुधारक यथा पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, पण्डिता रमाबाई, पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषण, नारायण गुरु, कण्डूपुरी विरेशलिङ्गम् आदि संस्कृत के ही प्रकाण्ड विद्वान थे।

संस्कृत के बिना भारतीय संस्कृति की कल्पना सम्भव नहीं है। इसीलिए स्वामीजी कहते थे कि भारतवर्ष में प्रतिष्ठा और संस्कृत सहगामिनी हैं। भारत में जब तक कोई व्यक्ति संस्कृत का अध्ययन न कर ले, तब तक वह किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं ला सकता। यह संस्कृत की अभ्युन्नति का रहस्य है। इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द का कथन द्रष्टव्य है – ''भारत में संस्कृत और प्रतिष्ठा दोनों साथ-साथ चलती है। जैसे ही वह आपके पास होगी, कोई आपके विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं करेगा। यह एक रहस्य है, इसे स्वीकार करें।''[५]

स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यानों से ज्ञात होता है कि विश्वहित, मानवजाति की उन्नति, सामाजिक विवादों का समाधान, पवित्रतमा ग्राह्या निखिलभाषा-जननीस्वरूपा संस्कृत भाषा में ही है। स्वामीजी कहते थे, ''एकमात्र समाधान जो प्राप्त किया जा सकता था, वह एक महान पवित्र भाषा की खोज थी, जो अन्य सबके द्वारा अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकृत हो और वह संस्कृत में प्राप्त हुई। यही भाषायी समाधान रहा।''[६]

शैशवकाल से ही स्वामीजी का संस्कृत के प्रति विशिष्टानुराग था। बाल्यकाल में उन्होंने बंगदेश में प्रचलित बोपदेव विरचित मुग्धबोध व्याकरण का अध्ययन किया था। भारत भ्रमण के समय आपका आगमन जयपुर नरेश के यहाँ हुआ। वहीं पर किसी वैयाकरण का भी आगमन हुआ, जिनसे स्वामीजी ने अष्टाध्यायी का अध्ययन प्रारम्भ किया। उन वैयाकरण ने सरल एवं विविध उपायों से स्वामीजी को अष्टाध्यायी के प्रथम सूत्र का भाष्य तीन दिनों तक पढ़ाया, किन्तु स्वामीजी के लिए यह अध्ययन दुर्बोध प्रतीत होने लगा। अत्यन्त प्रयत्न करने के उपरान्त उन वैयाकरण ने चतुर्थ दिन कहा कि मुझसे अध्ययन करके आपको कोई लाभ नहीं है। ऐसा सुनकर लज्जित स्वामीजी एक प्रहर में ही सम्पूर्ण सूत्र-भाष्य को कण्ठाग्र कर उन वैयाकरण के पास गये। स्वामीजी के द्वारा प्रस्तुत प्रांजल व्याख्यान को सुनकर वैयाकरण महाशय आश्चर्यचकित हो गये। तदनन्तर खेतड़ी नरेश के यहाँ निवास करते समय राजस्थान के वैयाकरणों में मूर्धन्य वैयाकरण नारायणदास से पाणिनीय व्याकरण एवं महाभाष्य का गहन अध्ययन किया। सम्पूर्ण अधीत विषय को अपने शिक्षक के समक्ष न केवल प्राञ्जल व्याख्यान के द्वारा उपस्थापित किया, अपितु उनमें अपने मत भी प्रकट किए। इससे स्वामीजी का संस्कृत व्याकरण के प्रति गम्भीर ज्ञान एवं अनुराग प्रमाणित होता है। ऐसी मान्यता है कि बंगाल में प्रचलित मुग्धबोध व्याकरण के स्थान पर पाणिनीय व्याकरण के अध्यापन का प्रथम प्रयास आपके द्वारा ही किया गया। पोरबन्दर (गुजरात) में आपने आचार्य पाण्डुरङ्ग से वेदान्तशास्त्र का गम्भीर अध्ययन करके नव्य वेदान्त के क्षेत्र में स्वयं को अग्रदूत के रूप में स्थापित किया।

स्वामी विवेकानन्द के लेखन पर संस्कृत का प्रभाव

चूँकि स्वामी विवेकानन्द का धर्मशास्त्रीय अध्ययन तथा औपनिषदिक चिन्तन गम्भीर था, अत: वे अपने व्याख्यानों, वार्तालापों, परिचर्चाओं, अपने से सम्बन्धित विभिन्न व्यक्तियों को लिखे पत्रों में वेद, उपनिषद, स्मृति एवं नीतिशास्त्रीय ग्रन्थों के श्लोक अथवा सूक्तियाँ उद्धृत करते थे। उनके द्वारा पत्रों में शास्त्र-वचनों का उद्धृत किया जाना सायास नहीं अपितु आनायास ही है, क्योंकि शास्त्रज्ञान उनकी अन्तश्चेतना में सन्निहित है। इस क्रम में श्री ई. टी. स्टर्डी को ५ अगस्त, १८९६ ई. में लिखित पत्र में वे हितोपदेश का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करते हैं –

सेवितव्यो महावृक्षः फलछायासमन्वितः।
यदि दैवात् फलं नास्ति छाया केन निवार्यते।।

इसी क्रम में वे ८ अगस्त, १८९६ ई. को श्री जे. जे. गुडविन को लिखे गये पत्र में विभिन्न उपनिषदों, श्रीमद्भगवदगीता के मन्त्र एवं श्लोक उद्धृत करते हैं।

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति।[७]

त्यागात् शान्तिरनन्तरम्।[८]
आत्मानं चेद् विजानीयात् अयमस्मीति पुरुषः।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंचरेत्।।[९]
मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।।[१०]
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।[११]
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ।[१२]
उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।[१३]

स्वामीजी अपनी शिष्या श्रीमती ओलि बुल को लिखे पत्र में '**एकमेवाद्वितीयम्**' श्रुतिवाक्य का उल्लेख करते हैं। स्वामी कृपानन्द को लिखे गए पत्र में वे अधोलिखित उपनिषद वाक्य का प्रयोग करते हैं –

सत्यमेव जयते नानृतम्, सत्येन पन्था विततो देवयानः।[१४]

स्वामी अभेदानन्द को १८९६ ई. को लिखित पत्र में वे कुछ सुभाषित उद्धृत करते हैं, जो इस प्रकार हैं – **'कर्मणा बाध्यते बुद्धिः, 'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः'**।

स्वामी विवेकानन्द की संस्कृत रचनाधर्मिता

नवम्बर, १८६९ में जब स्वामी विवेकानन्द बेलूड़ मठ में निवास कर रहे थे, उस समय स्वामीजी ने कुछ स्तोत्रों की रचना की थी। स्तोत्र साहित्य के आकर्षण का कहना ही क्या है ! इसका माधुर्य, लालित्य आनन्दप्रदता अवर्णनीय है। संस्कृत में स्तोत्र काव्य-परम्परा अत्यन्त विशाल एवं समृद्ध है। शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य और शौर्य, जैन, बौद्ध सभी सम्प्रदायों के स्तोत्रों से संस्कृत साहित्य का आगार परिपूर्ण है। स्तोत्र साहित्य में अपने अभीष्ट देव गुरु के प्रति उत्कट भक्ति, तीव्र अनुरक्ति एवं अनन्य श्रद्धा के भाव अभिव्यक्त होते हैं।

स्वामी विवेकानन्द के शिष्य शरदचन्द्र चक्रवर्ती का कहना है कि उन्होंने अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस की स्तुति में रचित स्तोत्र 'आचण्डालप्रतिहतरयो' एवं 'स्तब्धीकृत्य प्रलयकलितं' स्तोत्र की रचना एक ही दिन में कर दी थी। यह स्तोत्र इस प्रकार है –

आचण्डाल प्रतिहतरयो यस्य प्रेमप्रवाहः
लोकातीतोऽप्यहह न जहौ लोककल्याणमार्गम्।
त्रैलोक्येऽप्यप्रतिममहिमा जानकी प्राणबन्धो
भक्त्या ज्ञानं वृतवरवपुः सीतया यो हि रामः।।१।।
स्तब्धीकृत्य प्रलयकलितं वाहवोत्थं महान्तं
हित्वारात्रिं प्रकृतिसहजामन्धतामिस्रमिश्राम्।
गीतं शान्तं मधुरमपि यः सिंहनादं जगर्ज
सोऽयं जातः प्रथितपुरुषो रामकृष्णस्त्विदानीम्।।२।।
नरदेव देव जय जय नरदेव।।
शक्तिसमुद्र-समुत्थतरङ्गं दर्शित-प्रेमविजृम्भितरङ्गम्।
संशयराक्षसनाशमहास्त्रं यामि गुरुं शरणं भवैद्यम्।।३।।
अद्वयतत्त्वसमाहितचित्तं प्रोज्ज्वलभक्ति-पटावृतवृत्तम्।
कमकलेवरमद्भुत चेष्टं यामि गुरुं शरणं भववैद्यम्।।४।।
नरदेव देव जय जय नरदेव।।

शरदचन्द्र चक्रवर्ती लिखते हैं कि जिस दिन स्वामीजी ने इस स्तोत्र की रचना की, उस दिन उनकी जिह्वा पर साक्षात् विद्याधिष्ठात्री वाग्देवी सरस्वती विराजमान थीं। काव्यशास्त्र के विशेषज्ञों से ज्ञात होता है कि स्वामीजी ने अपने स्तोत्रों में छन्द-अलंकार, रस-रीति, गुण, समास का प्रयोग निपुणता से किया है।

स्वामी विवेकानन्द बृहदारण्यक उपनिषद के मन्त्रांश – '**तस्योपनिषद सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामैष सत्यम्**' एवं '**ॐ ह्रीं ऋतम**' इति पद के प्रयोग से अन्य एक स्तोत्र में अपने पूज्य गुरुवर्य वसन्ततिलका छन्द के प्रयोग से 'श्रीरामकृष्ण-स्तोत्रम्' की रचना करते हैं –

ॐ ह्रीं ऋतं त्वमचलो गुणजित् गुणेड्यो।।
नक्तन्दिवं सकरुणं तव पादपद्मम्।
मोहङ्कषं बहुकृतं न भजे यतोऽहं
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो।।१।।
भक्तिर्भगश्च भजनं भवभेदकारि
गच्छन्त्यलं सुविपुलं गमनाय तत्त्वम्।
वक्त्रोद्भृतोऽपि हृदये न च भाति किञ्चित्
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो।।२।।
तेजस्तरन्ति तरसा त्वयि तृप्ततृष्णा
रागे कृते ऋतपथे त्वयि रामकृष्णे।
मर्त्यामृतं तव पदं मरणोर्मिनाशं
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो।।३।।
कृत्यं करोति कलुषं कुहकान्तकारि
ष्णान्तं शिवं सुविमलं तव नाम नाथ।
यस्मादहं त्वशरणो जगदेकगम्य
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो।।४।।

स्वामीजी के द्वारा विरचित निम्नलिखित स्तोत्र अपने गुरु

श्रीरामकृष्ण परमहंस को समर्पित है। इस सन्दर्भ में एक पद्य में विरचित अग्रलिखित स्तोत्र ध्यातव्य है, जिसमें वे अपने गुरु को एकमात्र आश्रयदाता शरणागत वत्सल, सर्वपाप से विमुक्त करनेवाले के रूप में स्वीकार करते हैं –

सामाख्याद्यैर्गीतिसुमधुरै मेघगम्भीर घोषै-
र्यज्ञध्वान-ध्वनितगगनैर्ब्राह्मणैर्ज्ञातवेदैः।
वेदान्ताख्यैः सुविहितमखोद्भिन्न-मोहान्धकारैः
स्तुतो गीतो च इह सततं तं भजे रामकृष्णम्।।

मन्दाक्रान्ता छन्द में निबद्ध उपर्युक्त स्तोत्र गुरु के प्रति निष्काम भक्ति की चरम भावाभिव्यक्ति करता है। स्वामी विवेकानन्द के मौलिक काव्य रचना में छन्द-प्रयोग, भावगूढ़ता रसालंकार का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है, जिससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि आप एक दार्शनिक चिन्तक ही नहीं, अपितु श्रेष्ठ कवि भी थे। आप संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यूयार्क नगर से श्रीरामकृष्ण परमहंस के शिष्यों की जड़ता एवं भीरुता को दूर करने के लिये पत्र के माध्यम से बहुविध उपदेश प्रदान करते हैं। इस उपदेश के क्रम में वे एक स्वरचित श्लोक भी प्रेषित करते हैं।

कुर्मस्तारकचर्वणं त्रिभुवनमुत्पाटयामो बलात् ।
किं भो न विजनास्यस्मान् रामकृष्णदासा वयम्।।[१५]

स्वामी विवेकानन्द जगज्जननी पराम्बा भगवती दुर्गा एवं जगज्जनक श्रीसाम्ब सदाशिव के अनन्य उपासक एवं भक्त थे। भगवती की स्तुति में वे वसन्तिलका छन्द में अम्बा-स्तोत्र की रचना करते हैं, जिसके कुछ पद्य ध्यातव्य हैं –

का त्वं शुभे शिवकरे सुखदुखःहस्ते
आघूर्णितं भवजलं प्रबलोर्मिभङ्गै :।
शान्तिं विधातुमिह किं बहुधा विभग्नां
मातः प्रयत्नपरमासि सदैव विश्वे।।१।।
सम्पादयन्त्यविरतं त्वविरामवृत्ता
या वै स्थिता कृतफलं त्वकृतस्य नेत्री
सा मे भवत्वनुदिनं वरदा भवानी
जानाम्यहं ध्रुवमियं धृतकर्मपाशा।।२।।
या मा चिराय विनयत्यतिदुःखमार्गै-
रासिद्धितः स्वकलितैर्ललितैर्विलासैः।
या मे मतिं प्रविदधे सततं धरण्यां
साम्बा शिवा मम गतिः सफलेऽफले वा।।७।।

इसी क्रम में आप मालिनि छन्द में निबद्ध भगवान शिव को समर्पित श्रीशिवस्तोत्र की रचना करते हैं, जिसमें अद्वैतभावना की पूर्णाभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है। इस सन्दर्भ में श्रीशिवस्तोत्र के निम्नलिखित पद्य द्रष्टव्य हैं –

निखिलभुवनजन्म–स्थेमभङ्गप्ररोहाः
अकलितमहिमानः कल्पिता यत्र तस्मिन्।
सुविमलगगनाभे त्वीशसंस्थेप्यनीशे
मम भवतु भवेऽस्मिन् भासुरो भावबन्धः।।१।।
वहति विपुलवातः पूर्वसंस्काररूपः
विदलति बलवृन्दं घूर्णितेवोर्मिमाला।
प्रचलति खलु युग्मं युष्मदस्मत्प्रतीतम्
अतिविकलितरूपं नौमि चित्रं शिवस्थम्।।३।।
दुरितदलनदक्षं दक्षजादत्तदोषं
कलितकलिकलङ्कं कम्रकह्लारकान्तम्।
परहितकरणाय प्राणप्रच्छेदप्रीतं
नतनयननियुक्तं नीलकण्ठं नमामः।।६।।

उपर्युक्त रचनाओं के उदाहरण से स्वामीजी की संस्कृत काव्यशास्त्रीय एवं काव्यनिर्माण-क्षमता द्योतित होती है।

स्वामी विवेकानन्द पातञ्जल योगसूत्र का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद एवं भाष्य भी करते हैं। नव्यवेदान्त के अन्तर्गत प्रायोगिक वेदान्त दर्शन के आप प्रणेता रहे। गुरुविग्रह आपके हृदय मन्दिर में प्रतिष्ठित था। स्वामी विवेकानन्द अपने गुरु की स्तुति में एक श्लोक की रचना करते हैं, जिसका पाठ रामकृष्ण मठ-मिशन की पूजा-उपासना में प्रायः प्रतिध्वनित होता है –

ॐ स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे।
अवतारवरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः।।

निष्कर्ष – संस्कृत एवं संस्कृत विद्या के प्रति स्वामी विवेकानन्द का नैसर्गिक अनुराग था, जो हम सभी संस्कृतानुरागियों के लिए परम उत्साह प्रदायक है। स्वामी विवेकानन्द यह भलिभाँति जानते थे कि मानवकल्याण धर्म में निहित है और धर्म का मूल हमारे शास्त्र हैं, जो संस्कृत में निबद्ध हैं। अतः संस्कृत की शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य है। वेदान्त दर्शन एवं स्तोत्र साहित्य की समृद्धि में आपका महत्त्वपूर्ण अवदान है। श्रीरामकृष्ण परमहंस के प्रति रचित स्तोत्र भक्तिरस से परिपूर्ण एवं सहृदयहृदयाह्लादक है। भगवत्पाद श्रीशंकराचार्य विरचित स्तोत्रों में जिस प्रकार की भक्ति सन्निहित है, वही भावना-भक्ति स्वामी विवेकानन्द

विरचित स्तोत्रों में दिखती है। इस विषय में किसी भी प्रकार की शंका नहीं है। स्वामी विवेकानन्द के जीवन का मूल-मन्त्र मानवजाति का उद्धार था। अत: अपने कल्याण के लिये भारतीय संस्कृत में निबद्ध मूल आध्यात्मिक ग्रन्थों से सुपरिचित हो सकें, ऐसी आपकी भावना थी। उपर्युक्त परिचर्चा से स्वामी विवेकानन्द का संस्कृत विद्या विषयक प्रखर पाण्डित्य प्रकट होता है।

विश्वाचार्यं जगद्वन्द्यं विवेकानन्दरूपिणम्। वीरेश्वरात्समुत्पन्नं सप्तर्षिमण्डलागतम्।।

ज्ञानभक्तिप्रदातारं पद्माक्षगौरविग्रहम्। ध्यायेद्देवं ज्योति:पुञ्जं लोककल्याणकारिणम्।।

○○○

सन्दर्भ सूत्र : १. शिवमहिम्नस्तोत्रम् (श्लोक ७) प्रो. अमरनाथ पाणेडय, पृ. सं. ७ **२.** द कम्पलिट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द, खण्ड-३, पृ. २९८.२ **३.** वही, खं-६, पृ. १५८.२ **४.** वही, खण्ड-३, पृष्ठ २९१ **५.** वही, खं-३, पृष्ठ २९९.२ **६.** वही, खण्ड ३, पृष्ठ २९१ **७.** भगवद्गीता ५.३ **८.** वही, १२.१२ **९.** बृहदारण्यकोपनिषद ४.४.१२ **१०.** गीता.७.३ **११.** गीता २.६० **१२.** मुण्डकोपनिषद २.२५ **१३.** कठोपनिषद् १.३.१४ **१४.** मुण्डक. ३.१.६. **१५.** स्वामी विवेकानन्देर कविता समग्र, स्वामी सुपर्णानन्द, पृ. १५५.

सहायक ग्रन्थ – १. विवेकानन्द रचना समग्र (बांग्ला), अशोक पब्लिकेशन २०२३ **२.** स्तवनाञ्जलि: (मूलमात्रम्), रामकृष्ण मठ नागपुर, वर्ष १९८० से २०११ तक **३.** विवेकलहरी (संस्कृतानुवाद), पद्मजा अकादमी, प्रथम संस्करण २०१४ **४.** विवेकानन्द साहित्य (दस खण्डात्मक) अद्वैत आश्रम, (प्रकाशन विभाग) कोलकाता १९६३ (प्र.स.) द्वादश पुनर्मुद्रण मई, २०१९

कविता

परम धन्य वह जीव है

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

कथनी में कुछ और है, करनी में कुछ और ।
ऐसे मानव को कहीं नहीं शान्ति-सुख-ठौर ।।
काम-क्रोध-लोभादि का करो पूर्ण बलिदान ।
परमेश्वर को प्रिय यही, यह ही धर्म महान ।।
प्रभु-वियोग के ताप में जो तन देत तपाय ।
उसका मन-जीवन सहज नव कुन्दन बन जाय।।
योग-यज्ञ-जप-तप नहीं, नहि विद्या, नहि दान।
ऐसे नर-पशु का कभी कैसे हो उत्थान ।।
जहाँ रहो, हरि-मिलन-हित करो प्रेम से ध्यान।
कोई ऐसा थल नहीं, जहाँ नहीं भगवान ।।
एक बार ही प्रभु! मुझे कर लो तुम स्वीकार ।
जैसा भी हूँ आपका, अन्य नहीं आधार ।
आह नहीं होती वहाँ, जहाँ नहीं कुछ चाह।
प्रभु से पावन प्रेम ही सदा शान्ति-सुख राह ।
परम धन्य वह जीव है और वही बड़भाग।
जिसके जीवन में सदा हरि से है अनुराग ।।

कविता

मन चंचल है, वश में कर ले

केयूरभूषण, रायुपर

मन चंचल है वश में कर ले, मन तेरा है उसके बस क्यों ?
उसको तू अपने बस कर ले, तू उसके बस हो जाता क्यों?
तू शेरों को बस कर लेता, नागों को भी नाच नचाता,
हाथी तेरा कहना माने, तू मन से इतना घबराता क्यों?
मन तेरा है उसके बस क्यों ?
देखो मन ही तुम्हें नचाता, जहाँ वह चाहे तुम्हें भगाता,
पीछे-पीछे ले जाता है, जहाँ चाहे तुम्हें गिराता ।
मन को देखो, मन में ही रह जाता, हड्डी पसली, तुम्हारी तुड़वाता।
फिर भी तुम, नहीं सजग होते, मन के पीछे दौड़े जाते ।
अब गिरने पर तो चेत जरा, गड्ढे से निकलने की सोच जरा।
मन तेरा है उसके बस क्यों ?

यह रही सत्य की कसौटी – जो भी तुमको शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से दुर्बल बनाये उसे जहर की भाँति त्याग दो, उसमें जीवन-शक्ति नहीं है, वह कभी सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो बलप्रद है, वह पवित्रता है, वह ज्ञानस्वरूप है। सत्य तो वह है जो शक्ति दे, जो हृदय के अन्धकार को दूर कर दे, जो हृदय में स्फूर्ति भर दे। – स्वामी विवेकानन्द

गीतातत्त्व-चिन्तन

तेरहवाँ अध्याय (१३/३)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १३वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

यथार्थ ज्ञान की परिभाषा

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम।।२।।

भारत (हे अर्जुन!) सर्वक्षेत्रेषु क्षेत्रज्ञम् अपि माम् विद्धि (सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ भी मुझे जान) च क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः यत् ज्ञानम् (और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान है) तत् ज्ञानम् मम मतम् (वही यथार्थ ज्ञान है, यह मेरा मत है)।

"हे अर्जुन ! सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ भी मुझे जान और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान है, वही यथार्थ ज्ञान है, यह मेरा मत है।"

श्रीकृष्ण कहते हैं, 'हे भारत ! तुम मुझे सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ मानो। पहले केवल क्षेत्र कहा था, एकवचन का प्रयोग किया था। अब कह रहे हैं सभी खेतों का किसान। अर्थात् क्षेत्र (खेत) तो बहुत-से हो सकते हैं, पर उन खेतों को जाननेवाला किसान तो एक ही है और वह एक क्षेत्रज्ञ स्वयं भगवान ही हैं। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए मृत्यु और जीवन की भूमिका बताई गई। श्रीकृष्ण कहते हैं, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का विभाजन करनेवाला, जो ज्ञान है, वही मेरे मत में यथार्थ ज्ञान है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान दे रहे हैं, उसका तात्पर्य यह है कि यदि जीव यह जान ले कि उसके भीतर क्षेत्र का तात्पर्य क्या है और क्षेत्रज्ञ क्या है, तो जीवन के तथ्य को समझ जाए। एक प्राचीन कहावत है – **यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे** – जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है। यदि पिण्ड का ज्ञान हो गया, तो हम ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में भी जान सकते हैं। आज का भौतिक-विज्ञान बहुत-कुछ यही बात कहता है कि अणु के भीतर जो नियम क्रियाशील है, वही नियम बाहर ब्रह्माण्ड में क्रियाशील दिखाई देता है। तो यह पिण्ड को जान लेना इसलिए आवश्यक माना गया है कि उसके द्वारा हम ब्रह्माण्ड के तत्त्व को जान सकते हैं।

यदि कोई यह पूछे कि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान आवश्यक क्यों है? हम ब्रह्माण्ड को जानने का प्रयत्न ही क्यों करें? इस प्रश्न के उत्तर में शास्त्र बताते हैं कि हम जीवन में नाना प्रकार के दु:खों का भोग करते हैं, अशान्ति भोगते हैं, तनावों से गुजरते हैं, तब उपरोक्त ज्ञान प्राप्त कर लेने पर इन सबसे सदा के लिए छूट जाते हैं। वास्तव में देखा जाए, तो हम ऐसा सुख और ऐसी शान्ति पाने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं, जो सदा स्थायी रहे। संसार में जो सुख मिलता है, वह संवेदनात्मक है। संवेदनात्मक का मतलब यह है कि जैसे एक संवेदना जन्म लेती है और थोड़ी देर बाद उसका विनाश हो जाता है, ठीक उसी प्रकार जीवन के जो सुख हैं, वे उठते हैं, प्राप्त होते हैं, फिर थोड़ी देर के बाद नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य सतत सुख की चाह कर रहा है, इसीलिए पहले यह सिद्धान्त खोजा गया कि ऐसा कौन-सा सुख है, जिसको पा लेने के बाद उसके कभी नष्ट होने की सम्भावना ही न हो। ऐसी कौन-सी मन की अवस्था है, जहाँ जाने से ऐसी शान्ति मिले, जो कभी तिरोहित ही

न हो। तब उन्होंने यह समझा कि मनुष्य जब तक अपने शरीर को समग्र रूप से जान नहीं लेता, तब तक इस तरह का विचलन उसके अन्दर बना ही रहता है। ये जितने भी शास्त्र हैं, सब शरीर को जानने की पद्धतियाँ हैं। शास्त्र यह बताते हैं कि तुम अपने आपको जान लो, तुम्हारे भीतर किस प्रकार के तत्त्व हैं, इनका तुम बोध प्राप्त कर लो और जिस दिन उस सत्य का तुम्हें समग्र रूप से ज्ञान हो जाएगा, तुम सारे दुखों से मुक्त हो जाओगे।

इसीलिए शास्त्र पढ़ना, उनकी चर्चा करना, उनमें बताई गई बातों का मनन करना, इन सबका अभ्यास करना आवश्यक हो जाता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए भगवान ने अर्जुन को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का विशद वर्णन जो हमने किया, उससे समझें कि भगवान कहते हैं कि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों से ऊपर मैं हूँ। वे यह भी कहते हैं, क्षेत्रज्ञ के रूप में मैं ही प्रकट हूँ। सातवें अध्याय में भगवान ने अर्जुन को अपनी परा प्रकृति और अपरा प्रकृति के विषय में समझाया था। उन्होंने कहा था – ये दोनों ही प्रकृतियाँ मेरी ही हैं और इन दोनों के माध्यम से मैं विश्व-ब्रह्माण्ड की रचना करता हूँ।

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ ज्ञान : वेदान्त दर्शन की सरल व्याख्या

हमें बताया जा चुका है कि पाँच महाभूत, मन, बुद्धि और अहंकार, ये आठों तत्त्व मिलकर अपरा प्रकृति का निर्माण करते हैं। परा प्रकृति इससे भिन्न है। वह जीवभूता है। इसी परा प्रकृति के आधार पर यह सारा संसार टिका हुआ है, यह बात भगवान कहते हैं। इसी बात को भगवान तेरहवें अध्याय में शब्दान्तर करके क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के उदाहरण से समझाते हैं। जीव, आत्मा, परमात्मा, ये ऐसे शब्द हैं, जो हमारे मन में भ्रम पैदा करते हैं और उस भ्रम के कारण हम कई बातों को समझने में समर्थ नहीं हो पाते। भ्रम दूर हो जाएँ, तो दर्शन को समझने में सुविधा हो। दर्शन छह हैं – मीमांसा, न्याय, सांख्य, योग, वैशेषिक और वेदान्त। छह ऋषियों ने इनका प्रवर्तन किया। इनमें से वेदान्त-दर्शन बहुत ही तर्कसंगत है। अन्य सब दर्शनों ने आत्मा को भिन्न-भिन्न माना, आत्मा की व्याख्या अलग-अलग की है। इसीलिए उन पुस्तकों को पढ़ने से आत्मा का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। हम यह समझ नहीं पाते कि किसे सही मानें और किसे गलत ! इसलिए मैं इस विषय पर (आत्मा के विषय में) ऐसी व्याख्या करूँगा कि उसे समझ लेने के बाद आप कहीं भी कुछ भी पढ़ें, भ्रमित तो नहीं होंगे और आगे आनेवाले श्लोकों को भलीभाँति समझने में समर्थ होंगे।

वेदान्त ऐसा मानते हैं कि यह जो संसार में मायातत्त्व है, यह दो प्रकार के रूपों में अपने-आपको विभक्त कर देता है। ऊपर के प्रारम्भिक तत्त्व के सम्बन्ध में सांख्य और वेदान्त में मत-भिन्नता है, पर थोड़ा नीचे उतरकर जब हम संसार के सम्बन्ध में विचार करते हैं, तो उसके विषय में सांख्य और वेदान्त दोनों में मतैक्य पाते हैं। सांख्य-दर्शन संसार का जैसा वर्णन करता है, उसे ही वेदान्त-दर्शन भी स्वीकार कर लेता है। सामान्य रूप से हम यह कहा करते हैं कि स्वयं भगवान ही संसार के रूप में प्रकट हुए हैं और यह बात एक ढंग से ठीक भी है। सैद्धान्तिक दृष्टि से भी यही कहा जाता है कि ईश्वर ही सब कुछ बने हैं। ईश्वर कैसे हैं? उनका कोई आकार नहीं है। वे सर्वव्यापी हैं। स्वभावतया जो सर्वव्यापी है, उसका कोई आकार हो भी नहीं सकता। जो वस्तु सीमित है, उसका आकार तो उसकी सीमा है। पर जो वस्तु सीमित नहीं है, जिसके लिए जहाँ भी होने की हम कल्पना करें, वहीं वह उपस्थित है, तो उसका क्या आकार हो सकता है? जो देश के द्वारा सीमित होता है, आकार तो उसी का होता है। सर्वव्यापी तो निराकार ही रहेगा। जैसे आकाश अनन्त, व्यापक है। वह कहीं पर सीमित नहीं दिखाई देता। इसीलिए हम उसका कोई आकार स्वीकार नहीं करते। वैसे तत्त्व की दृष्टि से इस आकाश को भी सीमित माना गया है। यह कहा गया कि माया जब अपने-आपको संसार के रूप में प्रकट करती है, तो कुछ नीचे आकर के आकाश उत्पन्न होता है। इसका मतलब यह हुआ कि आकाश की भी अपनी एक सीमा है। उसी आकाश को हम सीमारहित मानते हैं और वही आकाश घड़े के भीतर हमें सीमित भी दिखाई देता है। बर्तन से घिर-सा जाता है। इसलिए उसमें हमें आकाश सीमित-सा दिखाई देने लगता है, पर वस्तुत: आकाश की कोई सीमा नहीं होती।

ईश्वर सर्वव्यापी है। आत्मा सर्वव्यापी है। आत्मा और परमात्मा इन दो शब्दों से एक ही अर्थ का बोध होता है। इसी एक तत्त्व को जब हम किसी व्यक्ति के अन्दर देखते हैं, तो उसे कहते हैं आत्मा और उसे ही जब सारे विश्व में व्याप्त देखते हैं, तो नाम देते हैं परमात्मा। जैसे घड़े के भीतर जो दिखाई देता है, उसे कहा घड़े का आकाश और

बाहर जो दिखाई देता है, उसे कहा अनन्त आकाश। आकाश तत्त्व तो सब जगह एक ही है। तो जब ईश्वर सर्वव्यापी है, सभी जगह है, तो फिर संसार कहाँ से निकला? जबकि एकमात्र सत्ता ईश्वर की ही है और ईश्वर निराकार है, तो फिर भिन्न-भिन्न रूप कैसे दिखाई देते हैं, क्यों दिखाई देते हैं?

इसके उत्तर में वेदान्त-दर्शन कहते हैं कि स्वयं ईश्वर ही माया नाम के एक तत्त्व को पैदा करता है। हम यदि ऐसे कहें कि ब्रह्म भी है और माया भी है, तो हमें उनकी दो भिन्न-भिन्न सत्ताएँ माननी पड़ेंगी। माया को एक स्वतन्त्र सत्ता मान लें, तो सत्ता का तो कभी नाश ही नहीं हो सकता। ऐसा कहें कि माया की ही सत्ता है, तब तो मनुष्य चाहे जितना ज्ञानार्जन करे, कितना भी चिन्तन करे, माया को नष्ट नहीं कर पाएगा। इसीलिए वेदान्त ने ऐसा निरूपण किया कि माया तो है, पर उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। जिस तरह रस्सी ही साँप दीख जाती है, वैसी ही सत्ता माया की भी वेदान्त ने मानी है। वेदान्त कहता है कि वह तत्त्व जिसे माया कहकर पुकारते हैं, उसे ब्रह्म न जाने कहाँ से लाकर हमारे सामने खड़ा कर देता है। स्वयं ब्रह्म ही माया को उत्पन्न करता है फिर उसकी ओर देखता है, उसका केवल ईक्षण करता है और उसके उस देखने से माया में विचलन पैदा होता है तथा उसी विचलन के कारण अन्यान्य तत्त्व पैदा होते हैं। यह है मोह-माया जिसे अव्यक्त-प्रकृति के नाम से पुकारा गया। वह अव्यक्त है और उसकी ओर ब्रह्म जब धीरे से दृष्टिपात करता है, तो उसमें विचार का प्रादुर्भाव होता है। विचार को ही कहा बुद्धि। विचार करनेवाला जो यह बुद्धितत्त्व है, यह महत्तत्त्व है। ब्रह्म के मन में जो इच्छा हुई कि – **एकोऽहं बहु स्याम्** – 'मैं अकेला हूँ, अनेक हो जाऊँ', तो उस इच्छा को नाम दिया गया अहंकार। ईश्वर के मन में जब अपने-आपको अलग-अलग रूपों में प्रकट करने की इच्छा जगी, तब मानो अहंकार का प्रादुर्भाव हुआ। इसके बाद धीरे-धीरे यह संसार प्रकट होता है।

ऋषियों द्वारा आविष्कृत क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ ज्ञान का भगवान द्वारा अर्जुन को पुनः कथन

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु।।३।।

तत् क्षेत्रम् यत् च यादृक् (वह क्षेत्र जो और जैसा है) च यद्विकारि च यतः यत् (तथा जिन विकारों वाला है और जिस कारण से हुआ है) च सः यः च यत्प्रभावः (तथा वह क्षेत्रज्ञ जो और जिस प्रभाववाला है) तत् समासेन मे शृणु (वह सब संक्षेप में मुझसे सुन)।

''वह क्षेत्र जो और जैसा है तथा जिन विकारों वाला है और जिस कारण से हुआ है तथा वह क्षेत्रज्ञ जो और जिस प्रभाववाला है, वह सब संक्षेप में मुझसे सुन।''

शरीर को बताया गया है क्षेत्र या खेत और उसे जाननेवाले को क्षेत्रज्ञ या किसान। खेत से किसान को जैसी फसल चाहिये होती है, उसी के अनुसार वह उसमें बीज बोता है। किन कर्मों के बीज से कौन से फल मिलेंगे, इसके ज्ञाता को क्षेत्रज्ञ कहते हैं। भगवान कहते हैं, ये बहुत से जो क्षेत्र हैं, इन सबके बीच में एक ही क्षेत्रज्ञ है। अर्थात् सब शरीरों के भीतर बैठकर उन्हें जाननेवाला भी मैं ही हूँ। यह 'भी' शब्द इस बात द्योतक है कि शरीर भी वही हैं और उन्हें जाननेवाले अन्तर्यामी भी वही हैं। जो ज्ञान क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को इस प्रकार बता देता है, उसे हे अर्जुन तू मेरा ही जान। इसके बाद बताते हैं कि वह जो क्षेत्र है, जिसके बारे में मैंने पहले कहा था – वह कैसा है? उसका स्वरूप क्या है? उसमें जो परिवर्तन होते हैं, विभिन्न विकार होते हैं, वे क्या हैं? यह शरीर कहाँ से उत्पन्न हुआ? वह सब तुम्हें बताऊँगा अर्जुन। वे कहते हैं कि क्षेत्रज्ञ कैसा है, उसका प्रभाव कैसा है, यह भी संक्षेप में तू मुझसे सुन। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के विषय में जो ज्ञान मैं तुम्हें देना चाहता हूँ, उसके विषय में अनेक ऋषियों ने कई प्रकार से विवेचनाएँ की हैं। ये ऋषि परम तत्त्वज्ञानी हैं और इस ज्ञान को उन्होंने विभिन्न छन्दों में गाकर बताया है। **(क्रमशः)**

केवल सत्कार्य करते रहो, सर्वदा पवित्र चिन्तन करो; असत् संस्कार रोकने का केवल यही एक उपाय है। ऐसा कभी मत कहो कि अमुक के उद्धार की कोई आशा नहीं है। क्यों? इसलिए कि वह व्यक्ति केवल एक विशिष्ट प्रकार के चरित्र का, कुछ अभ्यासों की समष्टि का द्योतक मात्र है और ये अभ्यास नये और सत् अभ्यास से दूर किये जा सकते हैं। चरित्र मात्र पुनः पुनः अभ्यास की समष्टि मात्र है और इस प्रकार का पुनः पुनः अभ्यास ही चरित्र का सुधार कर सकता है।

– स्वामी विवेकानन्द

साधुओं के पावन प्रसंग (७२)

स्वामी निखिलानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

श्रीमाँ का जिस दिन (२१ जुलाई, १९२०) शरीर-त्याग हुआ, स्वामी निखिलानन्द कोलकाता में ही थे। उस समय वे कोलकाता के एक संवादपत्र (Amrita Bazar Patrika) में रिपोर्टर थे। उस दिन प्रात:काल अप्रत्याशित रूप से वे बागबाजार मायेर बाड़ी में उपस्थित हुए। सोकर उठने के बाद उन्होंने एक दुकान से नाश्ता के लिए एक पावरोटी खरीदा तथा अपने कमरे में वापस न आकर बागबाजार जाने वाले एक ट्राम में चढ़ गये। सीधे मायेर बाड़ी पहुँचकर सुना कि श्रीमाँ ने रात्रि में शरीर-त्याग किया है। उद्बोधन में शोकार्त्त साधु तथा भक्तों का जो समूह फोटो लिया गया, उस फोटो में वे भी थे, उन्होंने उसको चिह्नित करके बताया था।

स्वामी सारदानन्द जी महाराज

स्वामी सारदानन्द जी महाराज की स्मृति बताते हुए निखिलानन्दजी कहते हैं, ''मैंने एक दिन शरत महाराज को कहा, 'महाराज, आप ठाकुर के एक महान शिष्य हैं। आप स्वेच्छा से ही हमलोगों को ईश्वर-दर्शन करा दे सकते हैं। फिर आप हमलोगों को जप-ध्यान, साधन-भजन करने के लिए क्यों कहते हैं?'' यह बात सुनकर महाराज ने स्नेहपूर्वक कहा, 'देखो, ठाकुर की कृपा से मैं दूसरों को ईश्वर-दर्शन करा दे सकता हूँ। किन्तु मैं यदि ऐसा करता हूँ, तो उस दर्शन का प्रचण्ड प्रभाव तुम सहन नहीं कर पाओगे। इसके फलस्वरूप या तो तुम पागल हो जायोगे या मर जाओगे। आध्यात्मिक साधना द्वारा स्वयं के शरीर तथा मन को तैयार करो, जिससे उस अनुभूति का वेग धारण करने में सक्षम हो सको।' ''

स्वामी सारदानन्द जी महाराज के सम्बन्ध में किसी एक समय निखिलानन्दजी ने कहा था, ''१९२५ ई. पुरी में स्वामी सारदानन्द जी ने वाराणसी में अपने साथ सेवक के रूप में मुझे ले जाने का कारण बताया था। उन्होंने मुझसे कहा था, 'तुम जब से मायावती में सम्मिलित हुए हो, मैंने तभी से तुम्हारे ऊपर दृष्टि रखी हुई है। पहले तुमने श्रीरामकृष्ण की जीवनी लिखी। तदुपरान्त तुमने उत्तर तथा पश्चिम भारत के अनेक स्थान का भ्रमण किया तथा वहाँ पर अनेक महाराजा तथा उच्च पदस्थ कर्मचारियों का स्वागत-सत्कार पाया। मैंने सब सुनकर मन में सोचा कि यह युवक संन्यासी होना चाहता है, किन्तु उसने गलत मार्ग पर चलना आरम्भ कर दिया है, पुस्तक लिखने तथा व्याख्यान देने लगा है। संन्यासी जीवन का कोई अनुभव ही नहीं हुआ है। द्रुतगति से अहंकार से फूलकर वह केला के पेड़ जैसा हो जायेगा। संन्यास जीवन के साथ उसका कोई परिचय नहीं होगा।' तदनन्तर उन्होंने कहा, 'हमलोगों ने पहले कठोर साधना की है। तत्पश्चात् पुस्तक लिखना या व्याख्यान देना आरम्भ किया है। मुझे सच में तुम्हारे लिए चिन्ता होती थी। इसीलिए व्याख्यान यात्रा से वापस आने पर तुमको अपने पास रहने के लिए कहा था, जिससे तुम देखकर यह सीख सको कि संन्यासी को कैसे रहना चाहिए। मैं निश्चित जानता था कि तुम समझ नहीं सके कि क्यों मैं तुमको वाराणसी में अपने सेवक के रूप में ले गया था।' उनकी कृपा को जानकर मैं विस्मित हो गया। अभी भी वह बात स्मरण होने से मेरी आँखों में आँसू भर जाता है।''

स्वामी निखिलानन्द अपने जीवन के अनुभव, ठाकुर के शिष्यों की बातें तथा विभिन्न मनीषियों के साथ अपने साक्षात्कार के सम्बन्ध में कभी-कभी स्मृतियाँ बताया करते थे। एक बार बातों-बातों में महात्मा गाँधी के सम्बन्ध में इस घटना को बताया था। लगता है यह १९२३-२४ ई. की बात है। १९२३ ई. में संन्यास के बाद वे विभिन्न स्थानों में व्याख्यान के लिए जाते थे। एक बार वे गुजरात साबरमती आश्रम में गये तथा वहाँ अतिथि होकर थे। वहाँ पर गाँधीजी के साथ उनकी मुलाकात हुई। एक दिन रात्रि में भोजन के बाद निखिलानन्द के साथ गाँधीजी के शिष्यों के साथ गहन वाद-विवाद हुआ तथा प्रश्न उठा कि आध्यात्मिकता में कौन श्रेष्ठ है स्वामीजी या गाँधीजी? गाँधीजी उस समय भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के प्रधान नायक थे तथा सम्पूर्ण भारतवासी उनके नाम को जानते थे। उनके शिष्यों ने जोर देते हुए कहा कि गाँधीजी स्वामीजी से बड़े व्यक्तित्व वाले हैं। निखिलानन्द ने उत्तर में कहा, "Swami Vivekananda was greater becuase he went about doing good to the people after realizing God, while Gandhiji was still knocking at the door of God." (अर्थात स्वामी विवेकानन्द महान थे क्योंकि उन्होंने भगवद् साक्षात्कार के बाद लोक कल्याण कार्य किया था, जबकि गाँधीजी अभी भी ईश्वर के द्वार पर दस्तक दे रहे हैं।)

गाँधीजी के शिष्यगण निखिलानन्दजी की बात मानने को तैयार नहीं थे। उन सब ने अगले दिन प्रात:काल गाँधीजी के पास जाकर कहा, ''गाँधीजी, यह युवा संन्यासी कहते हैं कि स्वामी विवेकानन्द आपसे बड़े हैं, क्योंकि उन्होंने पहले ईश्वर-दर्शन करने के पश्चात देश के कल्याण हेतु कार्य किया। और आप अभी भी ईश्वर के द्वार पर दस्तक दे रहे हैं।''

तब गाँधीजी ने हँसते हुए कहा "If this young Swami has said that I am knocking at the door of God, he has indeed paid me the greatest possible compliment." (यदि इन युवा संन्यासी ने कहा है कि मैं ईश्वर के द्वार पर दस्तक दे रहा हूँ, तब उन्होंने मेरे लिए महानतम सम्भव प्रशंसा किया- है।)

स्वामी श्रद्धानन्द के दैनन्दिनी में स्वामी निखिलानन्द जी का अमेरिका जाने के पूर्व महापुरुष महाराज के साथ साक्षात्कार के विषय में विवरण है :

२४/०८/१९३१

पूजनीय दिनेश महाराज (स्वामी निखिलानन्द) ने आज मठ से विदाई लेकर कोलम्बो होकर अमेरिका के लिए यात्रा की।

महापुरुष महाराज ने आशीर्वाद दिया, ''जहाँ भी जाओगे वहाँ ही हमलोग उपस्थित हैं। ठाकुर हैं, श्रीमाँ हैं, स्वामीजी हैं। जय गुरु महाराज, जय गुरु महाराज। (हाथ जोड़कर प्रणाम किये) जाओ और कोई भय नहीं है। (पीठ थपथपायी) जाओ, बाबा जाओ (क्या ही स्नेह और करुणापूर्ण शब्द !)।

आत्माराम (ठाकुर की अस्थि) का एक अंश दिनेश महाराज के साथ भेजा गया। उसी सम्बन्ध में महापुरुष महाराज ने कहा, ''आत्माराम सर्वत्र बिखर गये हैं। देखो बाबा, वह बौद्धयुग में हुआ था। पुन: ठाकुर आये हैं, पुन: वही हो रहा है। जय गुरु महाराज, जय गुरु महाराज !''

परवर्तीकाल में १९५९ ई. में ५ सितम्बर को स्वामी निखिलानन्द ने सहस्त्रद्वीपोद्यान से स्वामी श्रद्धानन्द को पत्र में यह विवरण लिखा था – मैंने और क्या कार्य किया है? अनेक पुस्तकों का अनुवाद किया है, वह भी ठाकुर और उनके शिष्यों के आशीर्वाद से। इस देश में आने के पूर्व जब मैंने पूजनीय महापुरुष महाराज को प्रणाम किया, तब उन्होंने कहा था, ''जाओ साला। जहाँ भी जाओगे, विजय पाओगे। विश्वविजयी होओगे। सर्वदा तुम्हारे साथ ही रहूँगा। नरक में जाने पर भी साथ-साथ में ही रहूँगा।'' इन सब बातों का स्मरण करने से ही आँखों में पानी आ जाता है।

शरत महाराज के सम्बन्ध में निखिलानन्दजी कहते हैं, ''शरीर जाने के पूर्व दिन शरत महाराज लकवा के कारण शय्याशायी थे। आंशिक अवचेतन तथा बायीं ओर पूरी तरह से लकवाग्रस्त। मैं बिस्तर के पास ही बैठा था। उन्होंने अकस्मात दायें हाथ से मुझे पकड़ लिया तथा मेरा मस्तक खींच कर अपने हृदय पर रखा था। मैंने मायावती में ठाकुर की जीवनी लिखी तथा तत्पश्चात् राजपूताना इत्यादि अनेक स्थानों में व्याख्यान दिया। तदुपरान्त शरत महाराज के साथ एक वर्ष तक था। उन्हीं दिनों उन्होंने एक दिन विशेष आशीर्वाद दिया था, जिससे मान-यश के लिए मेरा मन चंचल न हो।

''वास्तव में मन ही मन मैं यह अनुभव करता हूँ कि, ठाकुर अहैतुक कृपासिन्धु हैं। वे किसी की भी कोई इच्छा अपूर्ण नहीं रखते हैं।'' **(क्रमश:)**

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक – मनीषियों की दृष्टि में संस्कृत

लेखक – डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु'
प्रकाशक – कौण्डिन्य साहित्य सेवा समिति, पटेल नगर, कादीपुर, सुलतानपुर (उ.प्र.)
पृष्ठ - २१४, मूल्य – ३००/-
लेखक का मो.नं – ९५३२० ०६९००

'संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।'

देवभाषा संस्कृत वैश्विक महत्त्व-निधान है डॉ. सुशील पाण्डेय साहित्येन्दु कृत 'मनीषियों की दृष्टि में संस्कृत' नामक पुस्तक। पुस्तकारम्भ में मर्मज्ञ विद्वानों के शुभकामना-सन्देश हैं और महामहोपाध्याय देवर्षि कलानाथ शास्त्री लिखित पुरोवाक् स्वयं में संस्कृत-महत्त्व-निरूपक एक गम्भीर शोधलेख प्रतीत होता है। इसके पश्चात् संस्कृत के महत्त्व को रेखांकित करनेवाले तथा रचनात्मक योगदान करनेवाले भारतीय एवं विदेशी विद्वानों का उल्लेख किया गया है। विभिन्न देशों में संस्कृत की लोकप्रियता और प्रचलन-वर्णन के क्रम में अमेरिका में 'संस्कृत राकबैण्ड' तथा अर्जेण्टीना में 'संस्कृत डिस्को' का उल्लेख पाठकों के लिए सम्भवतः नवीन रोचक जानकारी सिद्ध होगी। संस्कृत के सम्बन्ध में व्यक्त भारतीय न्यायमूर्तियों, अनुसूचित जातियों के विद्वानों तथा मुसलमान मनीषियों के मन्तव्य भी पुस्तक के सूचनापरक आकर्षक अंश हैं। लेखक ने संस्कृत के सम्बन्ध में राष्ट्रकवि दिनकर जी के 'भारत-भारती' में प्रकाशित काव्यांश को भी उद्धृत कर संस्कृत की महिमा की ओर जन-मानस का ध्यान आकर्षित किया है –

प्राचीन ही है जो न, जिससे अन्य भाषायें बनीं,
भाषा हमारी देववाणी श्रुतिसुधा से है सनी।
है कौन भाषा यों अमर व्युत्पत्तिरूपी प्राण से,
हैं अन्य भाषा-शब्द उसके सामने म्रियमाण से।।
निकला जहाँ से आधुनिक वह भिन्न भाषातत्त्व है,
रखती न भाषा एक भी संस्कृत समान महत्त्व है।
पाणिनि-सदृश वैयाकरण संसार भर में कौन है,
इस प्रश्न का सर्वत्र उत्तर उत्तरोत्तर मौन है।।

भारतीय संविधान और संसद में प्रयुक्त संस्कृत के उल्लेखों के साथ जनभाषा के रूप में प्रचलित संस्कृत भाषी क्षेत्रों की सूचना तथा चिकित्सा, विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्रों में भी संस्कृत के महत्त्व पर यह पुस्तक यथेष्ट प्रकाश डालती है। भारतीय संस्कृति एवं संस्कारों को संस्कृतमूलक प्रतिपादित करने के साथ सम्पूर्ण विश्व के वर्तमान सन्दर्भ में संस्कृत की प्रासंगिकता और विलक्षणता पर चारु चिन्तन पुस्तक के मूल्यवान अंश हैं।

भारत सरकार तथा उसकी अन्य प्रमुख संस्थाओं द्वारा गृहीत संस्कृत के आदर्श वाक्यों की सूची तथा संस्कृत से सम्बन्धित जीविका के विभिन्न क्षेत्रों का उल्लेख करते हुए लेखक के द्वारा जनसमुदाय के समक्ष संस्कृत के प्रचार-प्रसार हेतु योगदान के विविध उपाय सुझाये गये हैं।

लेखक ने ग्रन्थ-प्रणयन के प्रेरणा-स्रोत पद्मभूषण पं. विद्यानिवास मिश्र का मन्तव्य उद्धृत किया है – ''संस्कृत के द्वारा ही भारतीय संस्कृति का संरक्षण एवं संवर्धन हो सकता है। उत्तर से दक्षिण, पूरब से पश्चिम भारत को राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक एकता के सूत्र में बाँधने की क्षमता केवल संस्कृत भाषा में है। आज आवश्यकता है संस्कृत को जन-जीवन में प्रचारित-प्रसारित करने की। जिस परिवार में संस्कृत है, वहाँ संस्कार है।''

२१४ पृष्ठों के इस ग्रन्थ में संस्कृत के सर्वांगीण महत्त्व को समाविष्ट करना श्लाघ्य भगीरथ प्रयत्न दृष्टिगत होता है और इस विशेषता के कारण यह पठनीय तथा संग्रहणीय है।

(समीक्षक – डॉ. सत्येन्दु शर्मा, सहा. प्राध्यापक, शा. दू.ब.महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर)

पुस्तकें प्राप्त हुईं –

१. सर्वेश्वर जगन्नाथ – सदाराम सिन्हा 'स्नेही'
२. जगदीश्वर जगन्नाथ – सदाराम सिन्हा 'स्नेही'
३. बाल-रामायण – पं. गिरिमोहन गुरु
४. शाश्वत श्रुति-विज्ञान – प्रकाशक – रामकृष्ण भक्तसंघ, जोधपुर

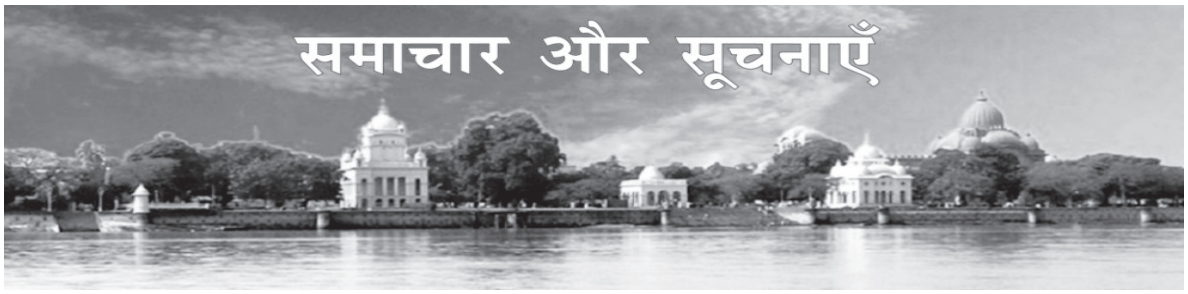

रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ में दुर्गापूजा

रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ में १० अक्तूबर से १३

अक्तूबर, २०२४ तक दुर्गापूजा का उत्सव बड़े धूमधाम से मनाया गया। चारों दिन भक्ति-संगीत, पूजा-पाठ, नित्य माँ दुर्गा की विशेष-पूजा और भोग होता रहा। महाष्टमी के दिन लगभग ५०,००० भक्तों को प्रसाद दिया गया। चारों दिनों में कुल १,१४,५०० भक्तों को प्रसाद प्रदान किया गया। सप्तमी के दिन केन्द्रीय मन्त्री श्री जे.पी.नड्डा और राज्यमन्त्री श्री डॉ. सुकान्त मजुमदार ने पूजा में भाग लिया।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के देश और विदेश के निम्नलिखित केन्द्रों ने व्यापक रूप से दुर्गापूजा का आयोजन किया

भारत में – आँटपूर, आसनसोल, बारासात, बिलासपुर, छत्तरपुर (रायगंज), कोन्टई, कूचबिहार, दिल्ली, धालेश्वर (अगरतला), दिग्बोई, गडबेत्ता, घाटशिला, गोहाटी, ग्वालियर, हाफलौंग, जलपाईगुड़ी, जमशेदपुर, जयरामवाटी, कैलाशहर, कामारपुकुर, करीमगंज, कासुन्दिया (हावड़ा), लखनऊ, मालदा, मेदिनीपुर, मुम्बई, पटना, पोर्टब्लेयर, राहड़ा, साहूदंगी, शेल्ला (सोहरा), शिलाँग, श्यामसायेर (वर्धमान), सिल्चर और वाराणसी अद्वैत आश्रम।

बांगलादेश में – बागेरहाट, बलियाती, बरीशाल, चाँदपुर, चटगाँव, कोमिला, ढाका, दिनाजपुर, फरीदपुर, हबीगंज, जेसोर, मैमेनसिंह, नारायणगंज, रंगपुर, सिलेट और नरैल (जेशोर)। **साउथ अफ्रीका –** डरबन, चैट्सवर्थ, पीटरमैरिट्सबर्ग। **लुसाका (जाम्बिया)** और **मारीशस** में भी दुर्गापूजा आयोजित हुई।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा व्यक्तित्व विकास शिविर का आयोजन हुआ

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा २४ और २५ अक्तूबर, २०२४ को 'व्यक्तित्व विकास प्रकल्प' के अन्तर्गत चार विद्यालयों – १. गोकर्ण उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, धुसेरा, सेजबहार, जिला – रायपुर २. सीनियर सेकेण्डरी स्कूल, सेक्टर-१०, भिलाई स्टील प्लाण्ट, जिला-दुर्ग ३. सीनियर सेकेण्डरी स्कूल, सेक्टर-७, भिलाई स्टील प्लाण्ट, जिला-दुर्ग ४. आमदी नगर विद्या निकेतन, सेक्टर-९, भिलाई स्टील प्लाण्ट,

जिला-दुर्ग में शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें छात्रों और शिक्षकों सहित कुल ५४५ लोगों ने भाग लिया। सभी कालेजों में व्यक्तित्व विकास पर स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने विद्यार्थियों को सम्बोधित किया। कार्यक्रम में गोकर्ण स्कूल के डायरेक्टर श्री प्रेमशंकर गोटिया जी, भिलाई स्टील प्लाण्ट के वरिष्ठ अधिकारी श्री पवन कुमार शर्मा जी, बाबूल चटर्जी, सुभाष मजुमदार जी, भिलाई स्टील प्लाण्ट के शिक्षाधिकारी महोदय आदि उपस्थित थे।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची में रामकृष्ण मठ और मिशन के उपाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी दिव्यानन्द जी महाराज ने ३० सितम्बर, २०२४ को 'बिरसा मुण्डा भवन' का उद्घाटन किया। इस भवन में छात्रों के कौशल विकास और प्रशिक्षण के कार्यक्रम आयोजित होंगे।